भीष्म चरित्र व्यास जी के अनुसार

महाभारत की युग परिवर्तनकारी घटना अनेक महत्वपूर्ण कारणभूत् घटनाओं का परिणाम थी। मेरे विचार से ये घटनाएं इस प्रकार हैं :-

1- राजा महाभिष को ब्रह्माजी के शाप के कारण उन्हें पृथ्वी पर शान्तनु के रूप में उत्पन्न होना पड़ता है।

2- वसुओं को वशिष्ठजी का शाप जिसके कारण उन्हें भी पृथ्वी पर उत्पन्न होना पड़ता है और जिस हेतु गंगा को मानवी रूप धारणकर उन्हें जन्म देना पड़ता है और उनका उद्धार करना पड़ता है। भीष्मजी का जन्म भी इसी कारण से हुआ था।

3- शान्तनु द्वारा आठवें शिशु को प्रवाहित करते समय गंगा की भर्त्सना और देवव्रत बालक की रक्षा।

4- दाषराज की शान्तनु के समक्ष रखी गई अपनी पुत्री सत्यवती के विवाह की अनुचित शर्त कि इसका पुत्र ही आपके बाद कुरूदेश का राजा बने।

5- भीष्म द्वारा की गई राज्यत्याग तथा ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा ।

6- चित्रांगद और विचित्रवीर्य की असामयिक मृत्यु ।

7- व्यासजी द्वारा नियोग से गर्भाधान।

8- पाण्डु की किन्दम ऋषि के शाप से मृत्यु।

9- भीष्म द्वारा गांधारराज सुबल की पुत्री गांधारी से धृतराष्ट्र का विवाह जिसके कारण शकुनि का पदार्पण हस्तिनापुर में हुआ।

10- द्रुपद द्वारा बालसखा द्रोण का अपमान जिसके कारण द्रोण का आगमन हस्तिनापुर में हुआ।

11- दुर्वासा ऋषि का कुन्ती को देव आवाहन का मंत्र जिससे पाण्डवों का जन्म संभव हुआ और कर्ण का भी।

12- रंगशाला में वीरकर्ण का अपमान जिसके कारण वह सदा के लिये दुर्योधन के पक्ष में चला गया।

13- इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ में अपनी समृद्धि का पाण्डवों द्वारा प्रदर्शन और राजभवन में जल में गिरने पर भीम द्वारा दुर्योधन का उपहास।

14- द्यूतसभा में द्रौपदी का अपमान।

15- दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण के पांच गांव की मांग को ठुकराते हुए यह कहना कि बिना युद्ध के मैं सुई की नोक के बराबर भूमि भी नहीं दूंगा।

इन कारणभूत घटनाओं में भी चार घटनाएं मेरे विचार से सर्वप्रमुख है जिन्होंने संपूण महाभारत की दिशा बदल दी। वे हैं :-

1- दाषराज की पुत्री के विवाह के लिए की गई शर्त।

2- पाण्डु को किन्दम ऋषि का शाप।

3- द्यूत क्रीड़ा और

4- दुर्योधन द्वारा श्रीकृष्ण का प्रस्ताव अमान्य करना।

इन चार घटनाओं के अभाव में महाभारत का भयानक युद्ध होना असंभव था। भीष्म द्वारा प्रतिज्ञाएं न की जाती तो उन्हीं के वंशज राज्य करते। पाण्डु शापग्रस्त न होते तो लगातार राजा बने रहते। अंधे धृतराष्ट्र को राज्यश्री का लोभ नहीं जागता और उत्तराधिकार का प्रश्न भी नहीं उदित होता। यदि दुर्योधन में हठ्वादिता नहीं होती तो भी यह युद्ध टाला जा सकता था। किन्तु सबके मूल में मेरे विचार से उस धूर्त दाषराज की शर्त ही है जिसके कारण कुरूवंश का वास्तविक अन्त भीष्म के साथ ही हो गया था। उसके बाद के दोनों कुमार व्यासजी से उत्पन्न थे।

भारत के इतिहास में वह बड़ा ही महत्वपूर्ण क्षण था जब भीष्म के ये शब्द गूंजे-

एव मेतद् करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे।
योऽस्यां जनिष्यतेपुत्र: स नो राजा भविष्यति॥।87।

"राज्यं तावत पूर्वमेव मयात्यक्तं नराधिपा:।
अपत्य हेतो रपि च करिष्येऽद्य विनिष्चयम्। 95।

अद्य प्रभृति मे दाष ब्रह्मचर्यं भविष्यति।
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि॥96।

महाभारत में भीष्म के व्यक्तित्व के विविधरूप दृष्टिगोचर होते हैं । वृहस्पति शुक्राचार्य द्वारा वेद तथा राजनीति में शिक्षित, परशुराम द्वारा युद्धविद्या तथा धुनर्वेद में प्रशिक्षित किशोर के रूप में पुरजनों और पिता के प्रिय युवराज के रूप में पिता के सुख के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाले पुत्र के रूप में, धर्म और प्रतिज्ञा पालक के रूप में, अपने अनुजों के पालक तथा संरक्षक के रूप में, व्यास नियोगजात धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के संरक्षक और पालक के रूप में, काशीराज द्वारा आयोजित स्वयंवर में अनेक राजाओं से एकाकी लड़कर विजय पाने वाले महान योद्धा के रूप में, वचन से विचलित न होने वाले और इसके लिये परशुराम जैसे गुरू से भी लड़ने वाले महान योद्धा के

रूप में राजसूय के अवसर पर श्रीकृष्ण की अग्रपूजा का सुझाव देकर श्रीकृष्ण की भगवत्ता के तत्व को जानने वाले मनीषी के रूप में, दुर्योधन को बार-बार समझाने वाले हितचिन्तक पितामह के रूप में, कर्ण की भर्त्सना करने वाले किन्तु उसका भी हित चिन्तन करने वाले के रूप में, द्रोण जैसे महान आचार्य को सम्मानपूर्वक हस्तिनापुर में बसाने वाले दूरदर्शी गुणग्राही के रूप में, महाभारत के प्रथम दस दिनों में महान पराक्रम करने वाले और श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा को भी तोड़ देने वाले अपराजेय योद्धा के रूप में, अपनी मृत्यु का रहस्य तक भी बताने वाले महान त्यागी के रूप में और अट्ठावन दिन तक शरशैय्या पर पड़े रहने वाले अतिशय सहिष्णु वीर के रूप में और अन्त में युधिष्ठिर को धर्म और राजधर्म का उपदेश देने वाले अनुपम ज्ञानी और उपदेशक के रूप में वे महाभारत में वर्णित हैं।

इन विभिन्न रूपों की झांकी हमें महाभारत में व्यासजी द्वारा दिखाई गई है जिसका परिचय हम क्रमश: प्राप्त करेंगे। वे यदि भगवान परशुराम से भी पराजित न होने वाले अप्रतिम योद्धा हैं तो श्रीकृष्ण का तत्व जानने वाले मनीषी भी। उस युग में भी श्रीकृष्ण का रहस्य जानने वाले केवल कुछ ही व्यक्ति थे। यदि हम परशुराम जैसे अवतारी, नारद, व्यासजी, असितदेवल, धौम्य और याज्ञवल्क्य जैसे महर्षियों के लिये यह ज्ञान सहज भी मान लें तो द्रोण व कृप जैसे आचार्यों और विदुर जैसे महात्मा नीतिज्ञ को ही श्रीकृष्ण की प्रभुता का ज्ञान था। भीष्म उन्हें तत्व से जानते थे। कुन्ती और कर्ण को भी इसका ज्ञान था। अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए भगवान ने अपना रहस्य प्रकट किया था, उससे पूर्व उन्हें ज्ञान नहीं था।

भीष्म जी की कथा को और उनसे ही संलग्न महाभारत की कथा को भली प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम भीष्म की उत्पत्ति से भी पहले का इतिहास जानें। वैशम्पायन ने जनमेजय से कुरूवंश का जो विस्तृत वर्णन किया था वह महाभारत के अध्याय 95 में निबद्ध है। वे बताते हैं कि दक्ष से अदिति, अदिति से विवस्वान फिर विवस्वान से मनु उत्पन्न हुए मनु से इला, इला से पुरूरवा, पुरूरवा से आयु, आयु से नहुष, नहुष से ययाति उत्पन्न हुए ययाति की दो पत्नियां थीं। शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और असुर राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा इनमें देवयानी से दो पुत्र यदु और तुर्वषु उत्पन्न हुए और शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु तथा पुरू उत्पन्न हुए इनमें यदु से यादव लोग उत्पन्न हुए और पुरू से पौरव।

दक्षाददितिरदितेर्विवस्वान विवस्वतेर्मनुमनोरिला
इलाया: पुरूरवा: पुरूरवस आयु रायुषो नहुषो
नहुषाद् ययाति: ययाते द्वै भार्ये बभूवसु:॥7॥

उषनसो दुहिता देवयानी वृषपर्वणष्च दुहिता
शर्मिष्ठा नाम॥8॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजनयत
द्रुह्यं चानुं पुरूं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी॥9॥

तत्र यदोर्यादवा: पूरो: पौरवा: ।10॥

इसके पश्चात पौरव वंश के जो महान राजा हुए हैं उनका संक्षेप उल्लेख यहां किया जा रहा है।

ईलिन और उनकी पत्नी रथन्तरी से दुष्यंत का जन्म हुआ था दुष्यंत का विवाह विश्वामित्र पुत्री शकुन्तला से हुआ जिससे भरत की उत्पत्ति हुई। भरत की पत्नी काशी नरेश सर्वसेन की पुत्री सुनंदा थीं जिनसे भुमन्यु की उत्पत्ति हुई भुमन्यु की पत्नी विजया दशार्ह देश की थीं उनसे सुहोत्र उत्पन्न हुए। सुहोत्र की पत्नी सुवर्णा इक्ष्वाकु वंश की राजकन्या थीं जिनसे राजा हस्ति उत्पन्न हुए। उन्होंने ही हस्तिनापुर नगर बसाया था।

सुहोत्र: खल्विक्ष्वाकु कन्यामुपयेमे सुवर्णा नाम तस्यामस्य जज्ञे हस्ती।
य इदं हस्तिनापुरं स्थापयामास ।
एतदस्य हास्तिनपुरत्वम्॥34॥अध्याय 95

हस्ति की पत्नी यशोधरा त्रिगर्त देश की राजकन्या थीं उनसे विकुण्ठन राजा उत्पन्न हुए जिनकी पत्नी सुदेवा थीं जो दशार्ह देश की थीं। इनसे अजमीढ उत्पन्न हुए जो इस वंश के प्रसि राजा हैं अजमीढ की चार पत्नियां थीं। जिनसे 124 पुत्र उत्पन्न हुए। उनके उत्तराधिकारी राजा संवरण बने। जिन्होंने सूर्य की पुत्री तपती से विवाह किया। संवरण व तपती के पुत्र कुरू थे जिनके नाम से ही अब पौरव वंश कौरव अर्थात कुरू वंश कहा जाने लगा । इनकी पत्नी शुभांगी दशार्ह देश की राजकन्या थी। इसी वंश में आगे चलकर राजा प्रतीप उत्पन्न हुए जिनकी पत्नी का नाम सुनन्दा था। प्रतीप के पिता का नाम प्रतिश्रवस था।

इनसे शांतनु की उत्पत्ति हुई और फिर शांतनु व गंगा से भीष्म उत्पन्न हुए। इस प्रकार यह पुरू वंश का विस्तृत विवरण है उनकी वंश परंपरा काफी लंबी थी जिसमें मनु पुरूरवा नहुष ययाति और भरत जैसे राजर्षि हुए हैं जिन्होंने देवताओं तक की सहायता की थी।

भीष्म कथा के सम्यक् बोध के लिए हमें तत्संबंधी अन्य उपाख्यानों का भी ज्ञान वांछनीय है जैसे- राजा वसु उपरिचर की कथा महार्षि वशिष्ठ द्वारा वसुओं को शाप की कथा तथा स्वर्ग में स्थित राजा महाभिष को दिये गए ब्रह्मा जी द्वारा दिए गए शाप की कथा। इन कथाओं का वर्णन महाभारत के आदि पर्व में किया गया है इनका संक्षेप में उल्लेख आवश्यक है।

राजा वसु उपरिचर की कथा आदि पर्व के 63 वें अध्याय में आती है हमें ज्ञात होता है कि इंद्र की आज्ञा से राजा वसु ने चेदि देश का आधिपत्य स्वीकार किया था। वे अत्यंत धर्मात्मा राजा थे। इंद्र ने इस भय से कि कहीं वे स्वर्ग प्राप्त न कर लें उन्हें पृथ्वी पर ही ऐश्वर्य भोग और प्रभाव उपलब्ध करा दिया था। उन्हें स्फटिक से बना एक विमान भी दिया गया था। जिस पर वे राजा वसु इच्छानुसार आकाश मार्ग से भ्रमण करते थे। इसी कारण उनका नाम उपरिचर अर्थात ऊपर चलने वाला पड़ गया। कथा है कि उनके वीर्य को यमुना स्थित मत्स्य द्वारा निगलने पर उस मत्स्य से एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्र आगे चलकर मत्स्य राज बने जिन्हें राजा उपरिचर ने स्वीकार कर लिया था किंतु पुत्री जिसके शरीर से मछली की गंध आती थी उसे दाश राज को ही दे दिया था कि वे उसे पुत्रीवत पालित करें। यही युवा होने पर सत्यवती या मत्स्यगंधा कहलायी। उपरिचर के ही एक पुत्र वृहद्रथ मगध देश के शासक बने।

इस कथा का उल्लेख महाभारत में इस प्रकार है।

स चेदिविषयं रम्यं वसु: पौरवनंदन।
इन्द्रोपदेशा ज्जग्राह रमणीयं महीपति।2/63॥

तयो: पुमांस जग्राह राजोपरिचरस्तदा।
स मत्स्यो नाम राजासीद् धार्मिक: सत्यसंगर: ।63/63

सा कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्यगंधिनी।
राज्ञा दत्ता च दाषाय कन्येयं ते भवत्विति।67/63॥

मत्स्यगंधा को देखकर जब वह उन्हें नाव द्वारा यमुना नदी पार करा रही थी। तब पराशर ऋषि ने उससे संसर्ग का प्रस्ताव किया और उसे गंध के स्थान पर सुगंध का वर दे दिया उनके संयोग से सत्यवती योजनगंधा बन गयी और उसने एक पुत्र को जन्म दिया जो बाद में व्यास ऋषि बने वे काले होने से कृष्ण और यमुना के द्वीप पर पले होने के कारण द्वैपायन कहलाये। उन्होंने वेदों का विस्तार किया था इस कारण उन्हें वेद व्यास कहा गया।

इस कथा का उल्लेख महाभारत में इस प्रकार है -

तस्यास्तु योजनाद् गन्धमाजिघ्रन्त नरा भुवि।
तस्या योजनगन्धेति ततो नामापरं स्मृतम्।82॥

पराषरेण संयुक्ता सद्यो गर्भं सुषाव सा।
जज्ञे च यमुनाद्वीपे पाराषर्यं स वीर्यवान्॥84॥

एवं द्वैपायन जज्ञे सत्यवत्यांपराषरात्।
न्यस्तो द्वीपे स यद् बालस्तस्मात द्वैपायनः स्मृतः॥86॥
विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः।

वैशम्पायन जी कहते हैं कि प्रत्येक युग में धर्म का एक-एक चरण लुप्त होता जाता है यह देखकर तथा मनुष्यों की आयु शक्ति बुद्धि और युग की अवस्था को देखकर लोक पर अनुग्रह की इच्छा से भगवान व्यास ने वेदों का विस्तार किया था।

आगे उल्लेख है कि व्यास जी ने अपने पुत्र शुकदेव तथा शिष्य सुमंतु जैमिन पैल तथा वैशम्पायन को वेदों का अध्यापन किया और महाभारत का भी जो कि पंचम वेद कहलाता है इन्हीं से बाद में महाभारत की भिन्न-भिन्न संहिताएं प्रकाशित हुईं।

इसके पश्चात आदिपर्व के अध्याय 96 में राजा महाभिष की कथा आती है जो इक्ष्वाकु वंशीय नरेश थे। और अपने धर्म कार्यों से उन्हें स्वर्ग प्राप्त हुआ वे देवताओं के साथ सभा में बैठते थे। ऐसी ही सभा में एक बार गंगाजी आयीं जिनका वस्त्र उड़ा तब देवगण ने अपना सिर झुका लिया किंतु महाभिष निःशंक हो वह दृश्य देखते रहे जिससे कुपित होकर ब्रह्माजी ने उन्हें शाप दे दिया कि मानसिक विकारों के कारण तुम्हें पुनः पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ेगा वहां यही गंगा तुम्हारे प्रतिकूल आचरण करेगी। इसी शाप के कारण महाभिष को राजा प्रतीप के यहां शांतनु के रूप में जन्म लेना पड़ा। महाभारत में यह वृतांत इस प्रकार वर्णित है-

इक्ष्वाकु वंष प्रभवो राजाऽऽसीत् पृथिवीपतिः।
महाभिष इतिख्यातो सत्यवाक् सत्यविक्रमः॥1/96॥आदिपर्व

सोऽपध्यातो भगवता ब्रह्मणा तु महाभिषः।
उक्तष्च जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि॥6/96॥

यया ऽऽहृत मनाष्चासि गंगया त्वं हि दुर्मते।
सा ते वै मानुषे लोके विप्रियाण्याचरिष्यति॥7/96॥

यदा ते भविता मन्युस्तदा शापाद् विमोक्ष्यसे।

इधर स्वर्ग में यदि ब्रह्माजी के कोप का भाजन एक राजा को बनना पड़ता है तो उधर पृथ्वी लोक में सुमेरू पर्वत पर स्थित आश्रम में वरूण के पुत्र वशिष्ठ ऋषि के कोप काभाजन देवयोनि वसुओं को बनना पड़ता है जो उनकी गाय सुरभि पुत्री नंदिनी को चुरा कर ले गए थे वशिष्ठ ने योग बल से जब यह जाना तो अपराधी वसुओं को उन्होंने भू लोक में उत्पन्न होने का शाप दे दिया। जब वसुओं ने बहुत अनुनय विनय की तो वषिष्ठ जी ने कहा कि आप लोगों को भू लोक में क्रमश: एक-एक वर्ष ही रहना पड़ेगा। किंतु आप में से द्यौ नामक जो वसु हैं वही मुख्य अपराधी हैं अत: उन्हें पृथ्वी लोक पर चिरकाल तक निवास करना पड़ेगा। यही द्यौ देवव्रत भीष्म के रूप में गंगा से अवतरित हुए।

वसुओं ने गंगा जी से प्रार्थना की थी कि हम लोग भूतल पर आप से ही उत्पन्न हों और हमारी शीघ्र मुक्ति के लिए आप हमें तुरंत अपने जल में प्रवाहित कर दें। गंगा ने स्वीकृति दे दी यह रहस्योद्याटन गंगा ने शांतनु से तब किया जब वे आठवें पुत्र को जल में प्रवाहित करने जा रहीं थीं इसका वर्णन अध्याय 99 में किया गया है। इस शाप की कथा महाभारत में इस प्रकार वर्णित है-

ज्ञात्वा तथापनीतां तां वसुभिर्दिव्य दर्शन:।
ययौ क्रोधवशं सद्य: सशाप च वसूंस्तदा॥31/99

यस्मास्ते वसवो जह्नर्गां वै दोग्ध्रीं सुबालधिम्।
तस्मात् सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशय:।32॥

उवाच च स धर्मात्मा शप्ता यूयं धरादय:।
अनुसंवत्सरत सर्वे शाप मोक्षमवाप्स्यथ।38॥

अयं तु यत्कृते यूयं मया शप्ता स वत्स्यति।
द्यौ स्तदा मानुषे लोके दीर्घकालं स्वकर्मणा॥39॥

न प्रजास्यति चाप्येष मानुषेषु महामना:।40/99॥आदिपर्व

इस प्रकार भीष्म का भूतल पर चिरकाल निवास और उनकी संतानहीनता स्वयं वषिष्ठ जी ने निश्चित कर दी थी।

ये शाप पृथ्वी लोक में प्रतिश्रवा के पुत्र प्रतीप के लिए वर स्वरूप हो गए वे अपनी पत्नी सुनंदा के साथ जो षिवि देष की राजकन्या थी घोर तप पुत्र प्राप्ति के लिए कर रहे थे इससे पूर्व उन्होंने गंगा को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने का वचन दिया था। चिरकाल तपस्या के पष्चात प्रतीप के तीन पुत्र हुए देवापि शांतनु और बाह्लीक ।

इनमें से देवापि युवा होने से पूर्व ही तपस्या हेतु वन में चल गए छोटे पुत्र बाह्लीक अपने नाना के घर चले गए तब शांतनु को ही उत्तराधिकारी बनाया गया। महाभारत में इसका उल्लेख इस प्रकार है-

प्रतिश्रवस: प्रतीप: खलु शैव्यामुपयेमे सुनंदा नाम।
तस्यां पुत्रानुत्पादयामास देवापिं शांतनु बाह्लीकं चेति।
देवापि: खलु बाल ऐवारण्यं विवेष।
शांतनुष्च मही पालो वभूव।45/67॥

प्रतीप के पुत्र के रूप में वास्तव में स्वर्ग से पतित राजा महाभिष ही उत्पन्न हुए थे। वे बड़ी तपस्या के बाद राजा प्रतीप की वृद्धावस्था में उत्पन्न हुए थे जब राजा की वासना शांत हो गयी थी इसी कारण पुत्र का नाम शांतनु हुआ। जैसा कि महाभारत में कहा गया है -

तपस्तेपे सुतस्यार्थे सभार्य: कुरूनंदन।
तयो: समभवत पुत्रो वृद्धयो: स महाभिष: ।
शान्तस्य जज्ञे सन्तान स्तस्मादासीत स शांतनु॥8॥

शांतनु को अपने पूर्व जन्म का स्मरण था अत: वे धर्म कार्य में प्रवृत्त रहते थे राज कार्यों के अतिरिक्त वे वन भ्रमण में मुदित रहते जब पिता ने उन्हें विवाह की आज्ञा दी तब उन्होंने इस पर विचार किया। शांतनु जब मृगया हेतु गंगा के किनारे के वनों में भ्रमण कर रहे थे तब उन्होंने अलौकिक सौन्दर्य से युक्त स्त्री देखी और उससे विवाह का प्रस्ताव किया यह गंगा ही थीं। किंतु उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया। बल्कि दो शर्तें इस संबंध के लिए रख दीं प्रथम उन्हें किसी भी कार्य प्रिय या अप्रिय करने से रोका नहीं जाएगा तथा राजा उनसे कभी कोई अप्रिय बात नहीं कहेंगे। जिस दिन कहेंगे उसी दिन वहसाथ छोड़ देगी। राजा ने यह स्वीकार कर लिया।

यत तु कुर्यामहं राजंछुभं वा यदि वाशुभम्।
न तद् वारयितव्यास्मि न वक्तव्या तथाप्रियम् ।3/98॥

एवं हि वर्तमानोऽहं त्वयि वत्स्यामि पार्थिव।
वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंषयम्। 4/98॥

इसके पश्चात उनका पारिवारिक जीवन सुख से बीतने लगा किंतु जब भी संतान उत्पन्न होती रानी उसे गंगा में प्रवाहित कर देती। क्रमश: ऐसा सात बार हुआ शांतनु मन मे अत्यंत दुखी होते थे किंतु गंगा के चले जाने के भय से वे चुप रहते हैं।

अष्टात्वजनयत् पुत्रां सप्ता ममर सन्निभान्।22॥
जातं जातं च सा पुत्रां क्षिपत्यम्भसि भारत।23/98॥

किंतु जब आठवें पुत्र को भी वह जल निमज्जित करने चली तब शांतनु का धैर्य टूट गया वे उसकी निंदा करते हुए बोले

मा वधी: कस्य कासीति किं हिनस्ति सुतानिति ।
पुत्रघ्नि सुमहत् पापं सम्प्राप्तं ते सुगर्हितम्।16/99। आदि पर्व

तब गंगा ने अपना परिचय दिया । नवजात शिशुओंं को प्रवाहित करने का रहस्य बताया। वशिष्ठ के शाप से ग्रस्त आठ वसुओं की मुक्ति के उद्यम में अपने योगदान का उल्लेख किया और यह भी कहा कि इस आठवें पुत्र को मैं तुम्हारे लिए बचा लेती हूं। यह देवव्रत या गांगेय या गंगादत्त के नाम से विख्यात होगा। अपने वचन के अनुसार मेरा तुम्हारे साथ रहने का समय समाप्त हुआ। और यह कहकर वह पुत्र सहित अंर्तधान हो जाती है।

पुत्र काम न ते हन्मि पुत्र पुत्रवतां वर ।
जीर्णस्तु ममवासोऽयम यथा च समय: कृत:17/99।आदि पर्व

अहं गंगा जह्नुसुता महर्षिगण सेविता ।
देवकार्यार्थ सिद्धयर्थमुषिताहं त्वया सह ॥18/99 आदि पर्व॥

इमेऽष्टौ वसवो देवा महाभागा महौजस: ।
वशिष्ठ शापदोषेण मानुषत्वमुपागता: ।

एष पर्यायवासो मे वसूनां संनिधौकृत: ।
मत्प्रसूतिं विजानीहि गंगादत्त मिमं सुतम् ॥ 24/99 आदिपर्व

इसके पश्चात दुखी मन से शांतनु राजधानी लौट आते हैं और लगभग 15-16 वर्षों तक एकाकी रहते हैं तब एक दिन गंगा तट पर विचरण करते समय उन्होंने देखा कि गंगा की धारा बहुत क्षीण रह गयी है इसका कारण जानने के लिए वे तट पर आगे बढ़ते हैं तो पाते हैं कि एक तेजस्वी किशोर ने अपने वाणों से गंगा का प्रवाह ही रोक दिया है।

कृत्स्नं गंगां समाकृत्य शरै स्तीक्ष्णैरवस्थितम्।26/99।आदिपर्व

वे आश्चर्य से इस अलौकिक कार्य को देखने लगे तभी गंगा प्रकट हुई और उन्होनें देवव्रत का परिचय शान्तनु से करवाया। इस प्रकार शान्तनु लगभग पंद्रह सोलह वर्ष एकाकी रहे । भीष्म की शिक्षा गंगा जी ने उत्तम से उत्तम करवायी थी । उन्हें बृहस्पति से वेद, शुक्राचार्य से राजनीति और भगवान परशुराम से धनुर्वेद व युद्ध विधा सिखाई थी। उन्होनें वशिष्ठ जी से भी वेदों का अध्ययन किया। इसका वर्णन महाभारत में इस प्रकार आता है -

गृहाण एवं महाराज मया संवर्धितं सुतम् ।34/99।आदिपर्व

वेदानाधिजगे सांगान वशिष्ठादेश वीर्यवान् ।
उषना वेद यच्छास्त्रमयं तद् वेद सर्वष: ॥

तथैवांगिरस: पुत्र: सुरासुरनमस्कृत: ।
यद्वेद शास्त्रं तच्चापि कृत्स्नमस्मिन् प्रतिष्ठितम्।37/99।आ.प.

यदस्त्रं वेद रामस्तदे तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
महेष्वास्मिमं राजन् राजधर्मार्थ कोविदम्।38/99।आदिपर्व

पुत्र को पाकर राजा के हर्ष की सीमा नहीं रहती और वे उसे नगर ले जाकर सभी नगर वासियों के समक्ष युवराज पद पर अभिषिक्त कर देते हैं ।

पौरवेषु तत: पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम् ।
गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ।42/99।आदपर्व

वे पुत्र के साथ प्रजा को आनंदित करते हुए शासन करते हैं और इस प्रकार चार वर्ष बीत जाते हैं। तब जाकर यमुना के तटवर्ती अरण्य में मृगयार्थ विहार करते हुए केवल गंध से आकर्षित होकर जाते हुए शान्तनु की सत्यवती से भेंट होती है।

स कदाचित् वनं यातो यमुनामभितो नदीम्।45/99।आदिपर्व

महीपतिरनिर्देष्यमाजिघृत गन्धमुत्तमम्
तस्य प्रभवमन्विच्छन् विचचार समन्तत:॥46॥

शान्तनु के विषय में भी हमें गहराई से अध्ययन करने पर अनेक नवीन तथ्यों का ज्ञान होता है। वे साधारण आखेट प्रिय राजा नहीं है और न किसी भी सुंदरी को देख कर मोहित हो जाने वाले हैं। उनके गुणों का वर्णन करते हुए व्यास जी ने लिखा है ।

स राजा शान्तनुर्धीमान् देव राजर्षि सत्कृत: ।
धर्मात्मा सर्वलोकेषु सत्यवागिति विश्रुत: ।1/100। संभव पर्व

दमो दानं क्षमा बुद्धि ह्री धृतिस्तेज उत्तमम् ।
नित्यान्यसन् महासत्वे शान्तनौ पुरूषर्षभे ।2/100। संभव पर्व

उनके नाम की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा गया है कि वे राजा प्रतीप की वृद्धावस्था में दीर्घ तपस्या के बाद उत्पन्न हुए थे। जब उनका कामभाव शान्त हो गया था अत: पुत्र का नाम शान्तनु हुआ। एक अन्य व्याख्या के अनुसार उनका नाम शान्तनु था क्योंकि वे सबको शम प्रदान करने वाले थे और जिसे छू देते थे वह वृद्ध भी युवा, नीरोग और प्रसन्न हो जाता था अत: वे शन्तनु कह लाए। शान्तनु इतने धर्मात्मा और वीर हैं कि सभी राजाओं ने उन्हें अपने आप ही सम्राट मान लिया है। और ऐसा सम्राट पाकर वे निश्चिंत हो धर्मानुकूल शासन करते हैं।

वर्तमानं हि धर्मेषु सर्वधर्मवृतां वरम्।
तं महीपा महीपालं राजराज्येऽभ्यषेचयन्।7/100। संभव पर्व

और तो और उन्होंने अपनी दयालुता वश पशुवध पर रोक लगा दी थी। व्यास जी यहां तक कहते हैं कि पीड़ित, अनाथ और पशुओं तक के लिए वे राजा पिता तुल्य थे।

वध: पषुवराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ।
शान्तनौ पृथिवीपाले नावर्तत तथा नृप । 15/100। संभव पर्व

असुखानामनाथानां तिर्यग्ययोनिषु वर्तताम् ।
स एव राजा सर्वेषां भूतानामभवत् पिता ।18/100। संभव पर्व

राजा शान्तनु छत्तीस वर्षों तक स्त्रीविषयक अनुराग से दूर रहे। यदि वे कामुक होते तो गंगा के विदा होते ही दूसरा विवाह कर लेते किंतु ऐसा नहीं हुआ। सभी विद्याएं, वेद तथा धनुर्वेद का अध्ययन करने के बाद ही किशोर पुत्र को गंगा ने लाकर उन्हें सौंपा था। अपने पुत्र देवव्रत के साथ भी वे पूरे चार वर्ष अकेले रहे इसके बाद ही सर्वप्रथम उनकी भेंट सत्यवती से हुई थी।

स समा: सोडषाष्टौ च चतस्त्रोऽष्टौ तथापरा: ।
रतिमप्राप्नुवन् स्त्रीषु बभूव वनगोचर: ॥

स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपति: ।
वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितव्रिकम: ।44/100।

स्पष्ट है कि जब वे छत्तीस वर्ष के थे तब गंगा से उनका विवाह हुआ और जब लगभग छप्पन वर्ष के थे तब उनका परिचय सत्यवती से हुआ। सत्यवती के प्रति आकृष्ट होते हुए भी वे उसके पालक दाष राज की अनुचित शर्त नहीं मानते और निराश हो हस्तिनापुर लौट आते हैं। दाषराज की मांग थी कि सत्यवती से उत्पन्न पुत्र ही राजा होगा। और शान्तनु देवव्रत जैसे पुत्र के रहते यह कैसे स्वीकार कर सकते थे। अत: उन्होनें स्वयं कहीं धर्म का उल्लंघन नहीं किया और न अपने पुत्र के अधिकारों का हनन किया।

दाष राज की शर्त थी -

अस्यां जायेत य: पुत्र: स राजापृथिवीपते ।
त्वमध्र्वमभिषेक्तव्यो नान्य: कष्चन् पार्थिव ॥56/100॥

राजा शान्तनु ने उसे यह वर नहीं दिया

नाकामयत तम दातुं वरं दाषाय शान्तनु: ।
शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत ॥57/100॥

पुत्र द्वारा अपनी मानसिक व्यथा और अस्वस्थता का कारण बताते हुए शान्तनु ने कहा था कि एक पुत्र होने के कारण मैं चिंतित हूं और तुम्हारे ऊपर संकट आने पर कुल का भविष्य भी संकट में पड़ जाएगा। विद्वान एक पुत्र को पुत्र नहीं मानते यद्यपि तुम एक ही सौ पुत्रों के बराबर हो और इसी कारण मैं स्त्री का इच्छुक हूं अन्य किसी कारण से नहीं। व्यास जी ने उनकी चिंता इन शब्दों में व्यक्त की है -

कथंचित तव गांगेय विपत्रों नास्ति न: कुलम् ।
अषंसयं त्वमैवैक: शतादपि वर: सुत: ।

न चाप्यहं वृथा भूपो दारान् कर्तुमिहोत्सहे ।
संतानस्याविनाषाय कामये भद्रमस्तु ते ॥66/100॥

एक और मिथ्या धारणा लोक में बनी हुई है कि शान्तनु ने काम वश होकर दाषराज कन्या को शूद्रजाति की होते हुए भी स्वीकार किया। किंतु ऐसा नहीं है। व्यास जी ऐसा स्पष्ट लिखते हैं कि दाष राज ने कन्या की उत्पत्ति का रहस्य भीष्म को बताया था।

अपत्य चैतदार्यस्य यो युष्माकं समो गुणै : ।
यस्य शुक्रात् सत्यवती संभूता वरवर्णिनी ॥79/100॥

सत्यवती का पाणिग्रहण संस्कार करके ही राजा शान्तनु ने उसे अपने महल में प्रवेश दिया था और महाभारत के दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार शान्तनु ने भी यह जानकर ऐसा किया था कि वह चेदिराज वसु उपरिचर की कन्या है। इसका प्रमाण ये श्लोक है-

चेदिराज सुतां ज्ञात्वा दाषराजेन वर्धिताम् ।
विवाहं कारयामास शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥

ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शान्तनुर्नृप।
तां कन्यां रूप संपन्नां स्वगृहे सन्यवेषयत् ॥

इस प्रकार इस पूरे प्रकरण में कहीं भी धर्म या मर्यादा का उल्लंघन नहीं है। शान्तनु को जब भीष्म द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं का वृत्त ज्ञात होता है तो उनको मर्मांतक पीड़ा होती है और वे पुत्र के महान त्याग से अभिभूत होकर उसे वर देते हैं कि मृत्यु तुम्हारे अधीन रहेगी और तुम्हारी इच्छा के अनुसार होगी। शान्तनु द्वारा दिया गया वर इस प्रकार है-

तच्छ्रुत्वा दुष्करं कर्म कृतं भीष्मेण शान्तनु: ।
स्वच्छंद मरणं तुष्टो ददौ तस्मै महात्मने ॥102

न ते मृत्यु: प्रभाविता यावज्जीवितु मिच्छसि ।
त्वत्तो ह्यनुज्ञां सम्प्राप्य मृत्यु: प्रभवितानघ ॥103

और यही वर भीष्म के उपयोग में आए जब महाभारत युद्ध के दसवें दिन वे शरशैय्या पर पड़े थे तब उन्होनें सूर्य के उत्तराणय होने तक प्राण धारण का संकल्प किया और अट्ठावन दिन उस स्थिति में पड़े रहे। सूर्य के उत्तरायणवर्ती होने पर ही उन्होंने स्वर्गारोहण किया।

शान्तनु के सत्यवती से दो पुत्र हुए प्रथम चित्रांगद और दूसरा विचित्रवीर्य किंतु जब विचित्रवीर्य कुमार ही थे शान्तनु की मृत्यु हो गई। जिसका वर्णन इस प्रकार मिलता है -

अप्राप्तवति तस्मिन्स्तु यौवन पुरूषर्षभे ।
सराजा शान्तनुर्धीमान कालधर्ममुपेयिवान् ॥4॥

उनकी मृत्यु पर बड़े पुत्र चित्रांगद को भीष्म ने माता सत्यवती की सम्मति से कुरूदेश का राजा बनाया किंतु वह बड़े अभिमानी और उध्दत स्वभाव का था। अपने समान वह किसी को नहीं समझता था। मनुष्यों की तो बात ही क्या वह अन्य राजाओं और यहां तक कि गंधर्व, दानवों और देवों को भी कुछ नहीं समझता था। इसी कारण एक निरर्थक द्वन्द्व में वह चित्रांगद नाम के ही एक गंधर्व द्वारा मारा गया।

स तु चित्रांगद: शौर्याद् सर्वाष्चिक्षेप पार्थिवान् ।
मनुष्यं न हि मेने स कंचित सदृषमात्मन: ॥6॥

गंधर्व द्वारा चित्रांगद के मारे जाने से भीष्म, सत्यवती तथा संपूर्ण नगर शोक मग्न हो जाता है। तब भीष्म माता को धैर्य बंधाते हुए अल्प वयस्क विचित्रवीर्य को शासनारूढ़ करते हैं और राज्य की रक्षा करते रहते हैं।

विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्त यौवनम्।
कुरू राज्ये महाबाहु रभ्यषिन्चदनन्तरम्।12/105॥

विचित्र वीर्य के युवा होने पर वे उसके विवाह पर विचार करते हैं और तब यह समाचार उन्हें मिलता है कि काशी नरेश अपनी पुत्रियों का स्वयंवर कर रहे हैं उनकी तीन कन्याएं अंबा, अंबिका और अंबालिका बहुत गुणवती हैं वे अकेले ही काशी पहुंचते हैं और वहां उपस्थित समस्त राजाओं को अकेले ही परास्त कर देते हैं और फिर कन्याओं को जीतकर उन्हें विचित्रवीर्य के लिए हस्तिनापुर ले आते हैं।

भीष्म के चरित्र की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि उन्होनें विचित्रवीर्य से विवाह के लिए काशीराज की कन्याओं का हरण किया। इस संबंध में भ्रान्तियों का निवारण आवश्यक है। पूर्व काल में विभिन्न राज परिवारों में कन्या दान की भिन्न भिन्न प्रथाएं प्रचलित थीं। कई जगह स्वयंवर प्रथा थी जैसे शूरसेन देश में तभी तो कुन्ती का विवाह पाण्डु से इसी विधि से हुआ था। मद्र देश में धन के रूप में शुल्क देकर कन्या के विवाह की प्रथा थी जैसा कि हमें शल्य की बहन माद्री के विवाह में देखने को मिलता है। तो कहीं अस्त्र कौशल या पराक्रम सिद्ध करके विवाह किया जाता था। जैसा कि पूर्व काल में विदेह में होता था या जैसा द्रोपदी के स्वयंवर में पांचाल देश में हुआ। काशी राज के यहां भी प्रथा थी कि जो सबसे विक्रमी हो वही कन्या का वरण करे और इसे वीर्य शुल्का प्रथा कहा गया। इस प्रकार की रीति के कारण ही भीष्म काशी पहुंचे और अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर उपस्थित सारे राजाओं को परास्त कर कन्याओं को अपने अनुज विचित्रवीर्य के लिए ले आए। इसमें कहीं कोई धर्म विप्लव नहीं था। जैसा कि महाभारत के उल्लेखों से प्रमाणित है।

वीर्यषुल्काष्च ता: ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा ।
अवोचं पार्थिवान सर्वानहं तत्र समागताम् ॥14॥

भीष्म शान्तनव: कन्या हरतीति पुन: पुन: ।
ते यतध्वं परंषक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिव: ॥15॥

ते निवृत्ताष्च भग्नाष्च दृष्टवा तल्लाघवं मम् ।
तथाहं हास्तिनपुरमागां जित्वा महीक्षित: ॥22॥

काशी देश में यह प्रथा थी यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि भीम ने भी विक्रम से ही अपने लिए एक पत्नी ..... काशी देश से प्राप्त की थी और दुर्योधन की पत्नी भानुमती भी कर्ण द्वारा सभी राजाओं को हराने के बाद विक्रम से ही प्राप्त की गई थी। इस कन्या हरण के प्रकरण में यदि अम्बा का शाल्व के प्रति अनुराग न होता तो कोई दोष नहीं था। किंतु यह भीष्म नहीं जानते थे। स्वयं अम्बा ने उन्हें हस्तिनापुर में आकर यह बताया था।

भीष्म त्वमसि: धर्मज्ञ: सर्वषास्त्र विषारद: ।
श्रुत्वा: वचनं धर्म्यं महयं कर्तु मिहार्हषि ॥5॥

मया शाल्वपति पूर्व मम्ं मनसाविवृतोवर: ।
तेन चास्मि वृता पूर्वं रहस्यविहिते पितु: ॥6॥

अम्बा के इस रहस्य उद्घाटन के तुरंत बाद भीष्म ने उसे अपनी पुत्री के समान सम्मान सहित ब्राह्मणों और रक्षकों के दल के साथ उसकी इच्छा के अनुसार शाल्व के पास भेज दिया था। सारा प्रकरण दुखद केवल इस कारण हो गया कि शाल्व ने अपनी प्रेमिका का प्रत्याख्यान कर दिया। अंबा ने जब अपना दुख परशुराम से निवेदित किया है तो वहां भी उसने स्वीकार किया है कि उसके प्रणय से भीष्म अनभिज्ञ थे अत: उनका दोष नहीं है। दोष शाल्व का है। किंतु भीष्म द्वारा हरण के कारण और शाल्व की पराजय के कारण मुझे अस्वीकार किया गया इस कारण विपत्ति के मूल में भीष्म हैं। अम्बा ने अपने पिता की भी निंदा की है जिन्होनें स्वयंवर में कन्याओं को वीर्य शुल्का बना दिया। और उन्हें पुण्य स्त्री वत कर दिया । इस परिप्रेक्ष्य में देखने पर हमें भीष्म का दोष लघुतर लगता है जिसमें कहीं धर्म का उल्लंघन नहीं है।

अपने प्रेमी राजा शाल्व के समीप पहुंची अम्बा के सारे स्वप्न बिखर जाते हैं। शाल्व उसकी प्रार्थना को पूर्व कृत संपूर्ण प्रणय को भूलकर केवल इस आधार पर अस्वीकृत कर देता है कि अब तुम भीष्म द्वारा विजित हो। नितांत विषाद ग्रस्त और सर्वथा निराश एकाकी युवती परम तेजस्वी परशुराम जी के पास जाती है और उनसे सहायता की याचना करती है। वे उस पर करूणा कर भीष्म को समझाने के लिए स्वयं उसे लेकर हस्तिनापुर जात हैं और कुछ दूर सरस्वती नदी के तट पर पड़ाव डालते हैं। उनका संदेश सुनकर भीष्म आते अवश्य हैं गुरू का सत्कार भी करते हैं किंतु गुरु की आज्ञा अस्वीकृत करते हुए अम्बा को स्वीकार नहीं करते और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हैं। तब परशुराम उन्हें युद्ध के लिए आमंत्रित करते हैं और भीष्म अपने व्रत भंग को अधिक महत्व देते हुए गुरु के विरुद्ध भी युद्ध हेतु उद्यत हो जाते हैं। महान तेजस्वी और धर्नुवेद में निष्णात दोनों महापुरुषों का युद्ध इक्कीस दिन तक चलता है किंतु अनिर्णीत रहता है। नारद आदि के द्वारा आकर युद्ध रोक दिया जाता है। और परशुराम विफल मनोरथ लौट जाते हैं। भग्नहृदया अम्बा विरक्त होकर तपस्यार्थ चली जाती है और अगले दो जीवन तक विभिन्न तीर्थों में तपस्या करती है और अंत में द्रुपद के यहां शिखण्डी के रूप में जन्म लेती है। उसकी तपस्या का एक ही उद्देश्य है भीष्म द्वारा किए गए अपराध का दण्ड देते हुए उनका विनाष। महाभारत में इस प्रकरण का उल्लेख अम्बोपाख्यान में किया गया है।

शाल्व द्वारा किया गया प्रत्याख्यान उधोग पर्व के 175वें अध्याय में इस प्रकार वर्णित है -

गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाषं भीष्मकस्य वै ।
नाहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रस्हय वै ॥6

अम्बा परशुराम जी की शरण में जाती है और उनसे कहती है कि मेरी दुर्दशा का मूल कारण भीष्म ही है अत: आप उनका संहार कीजिए।

मम तु व्यसनस्यास्य भीष्मौ मूलं महाव्रत: ।38॥

परशुराम जी उसकी सहायता का आश्वासन देते हैं उन्हें विश्वास है कि शिष्य होने के कारण भीष्म उनकी बात मान लेगें। वे प्रारंभ में आशावान है कि मैं वैसा करूंगा कि साम नीति से ही कार्य बन जाए। इस प्रकार परशुराम स्वयं युद्ध नहीं चाहते ।

तथैव च चरिष्यामि यथा साम्नैव लप्स्यते । 16 ।

वे कुरूक्षेत्र के पास सरस्वती नदी के तट पर जाकर भीष्म को संदेश भिजवाते हैं और उनके आने पर कहते हैं कि तुमने इस कन्या का हरण क्यों किया और फिर इसे त्यागा क्यों। तुम्हारे कारण ही यह धर्म से हीन हो गयी है और तुम्हारे ही कारण शाल्व ने इसका अनादर किया है। अत: मेरी आज्ञा से तुम इसे ग्रहण करो।

प्रत्याख्याता हि शाल्वेन त्वयाऽऽनीतेति भारत ।
तस्मादिमां मन्नियोगात प्रतिगृह्णीष्व भारत ॥30॥

किंतु भीष्म अपनी प्रतिज्ञा और धर्म की दुहाई देकर और यह कहकर कि यह कन्या अन्य को चाहती है ऐसी स्त्री को कौन ग्रहण करेगा। गुरू की आज्ञा अस्वीकृत कर देते हैं।
भीष्म के शब्दों में

न भयान्नाप्यनुक्रारेषान्नार्थलोभान्न काम्यया ।
क्षात्रं धर्म महं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥34॥

तब क्रुद्ध परशुराम उनसे कहते हैं कि यदि तुम्हें अपने कुल की रक्षा करनी है तो इसे ग्रहण करो तब भीष्म उग्र हो उठते हैं और यहां हम देखते हैं कि वे न केवल युद्ध करने को प्रस्तुत हैं बल्कि गुरू की निंदा भी करते है और अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर यहां तक कह देते हैं कि आप गुरू का आचरण नहीं जानते। वे उन्हें यहां तक धमकी दे देते हैं कि मेरे साथ युद्ध में मेरे बाणों से पीड़ित आप स्वर्ग की प्राप्ति करेंगे। वे यहां तक कह देते हैं कि जिस कुरूक्षेत्र के समंत पंचक क्षेत्र में आपने पितरों का तर्पण कर शुद्धि की थी वहीं आज में शुद्धि करूंगा और यह संसार में प्रचलित है और जिसका आप भी बहुत बखान करते हैं कि मैंने क्षत्रियों को इक्कीस बार विनष्ट किया है तो उस समय भीष्म उत्पन्न नहीं हुआ था या मेरे जैसा क्षत्रिय उत्पन्न नहीं हुआ था । आपके तथाकथित तेज ने केवल घास फूस को जलाया है और युद्ध में आज मैं आपका दर्भ नष्ट कर दूंगा। इस स्थल पर भीष्म मर्यादा का उल्लघंन करते हैं। गुरु वाक्यों को अस्वीकार कर वे कह सकते थे कि मैं दण्ड हेतु प्रस्तुत हैं किंतु वे द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत हैं और यदि द्वन्द्व भी करते तो विनम्रता न त्यागते। इस स्थल पर भी उनका चरित्र गिरा है। उन्हें केवल अपनी प्रतिज्ञा की चिंता है जिसके लिए वे न केवल लोक निंदा सहने को बल्कि गुरु तक को पराजित करने या मारने को उद्यत हो जाते हैं।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्य मजानत: ।
उत्पथप्रतिपनस्य परित्यागो विधीयते ॥48॥

स त्वं गुरूरिति प्रेमणा मया सम्मानितो भृषम् ।
गुरूवृत्तिं न जानीषै तस्माद् योत्स्यामि वै त्वया ॥49।

तत्र त्वं निहतो राम मया शरषतार्दित: ॥
प्राप्स्यसे निर्जितांल्लोकान शस्त्रपूतो महारणे ॥58॥

अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितु: ।
तत्राहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्तास्मि भार्गव ॥60॥

यच्चापि कत्थसे राम वहुष: परिषत्सु वै ।
निर्जिता: क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छणु ॥62॥

न तदा जातवान भीष्म: क्षत्रियो वापि मद्विध: ।
पष्चाज्जातानि तेजान्सि तृणेषुज्वलितं त्वया ॥63॥

परशुराम अवतारी पुरुष हैं। महातपस्वी और गुरु हैं वे अपनी मर्यादा नहीं छोड़ते। वे हंसते हुए भीष्म से कहते हैं चलो अच्छा है तुम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो।

ततो मामव्रवीत राम: प्रहसन्निव भारत ।
दिष्टया भीष्म मया सार्धं योदुमिच्छसि संगरे ॥65॥

भीष्म हस्तिनापुर जाकर सत्यवती की आज्ञा लेकर युद्ध सामग्री से सज्जित होकर कुरुक्षेत्र में गुरू से संग्ारम हेतु आते हैं। और यहां भी उल्लेखनीय है कि वे युद्धारंभ का प्रतीक शंखनाद पहले करते है।

तत: संदर्षनेऽतिष्ठं रामस्याति तपस्विन: ।
प्रगृह्य शंखप्रवरं तत: प्राधमदुत्तमम् ॥82॥

दोनों को युद्ध के लिए उद्यत देखकर गंगा ने अपने पुत्र की भर्त्सना की और युद्ध से विरत होने की आज्ञा दी किंतु भीष्म नहीं माना। और उनके वाक्य की अवज्ञा कर दी।

ततो गंगा सुतस्नेहाद भीष्मं पुनरूपागमत ।
न चास्याष्चाकरोद वाक्यं क्ारेधपर्याकुलेक्षण: ॥94॥

दोनों अप्रतिम योद्धा और धनुर्वेदाचार्य थे। विविध शस्त्र और महास्त्र चलाए गए किंतु 21 दिनों के बाद भी कोई विजयी न हुआ। तब एक रात चिंतित भीष्म को वसुओं ने दर्शन देकर कहा तुम राम पर प्रस्वापन अस्त्र का प्रयोग करो। अगले दिन भीष्म ने वही किया तो देवताओं ने आकाश में उपस्थित होकर भीष्म को मना किया तो भी भीष्म ने बाण चढ़ा लिया।

अयुंजमेव चैवाहं तस्मै भृगुनन्दने ।

तब नारद ने प्रकट होकर कहा कि इस अस्त्र का प्रयोग न करो । देवगण भी तुम्हें रोक रहे हैं । नारद जी के शब्दों में

एते वियति कौरव्य दिवि देवगणा स्थित: ।
ते त्वां निवारयन्यद्य प्रस्वापं मा प्रयोजय ॥3॥

रामस्तपस्वी ब्रह्मणौ ब्राह्मण: गुरूष्चते ।
तस्यावमानं कौरव्य मा स्म कार्षी कथंचन ॥4॥

इसके बाद भी भीष्म रण में अड़े रहे और कहा कि मैं क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए युद्ध से विमुख नहीं होता। यहां यह उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व परशुराम जी ने जब एक प्राणघातक बाण धनुष पर चढ़ाया था तब महर्षियों के मना करने पर क्रोध में भरे होकर भी परशुराम जी ने वह बाण भीष्म पर नहीं चलाया था।

महर्षय: कृपायुक्ता: क्रारेधविष्टोऽथ भार्गव: ।
स मेऽहरदमेयात्मा शरं कालानलोपमम् ॥27॥

इस प्रकार परशुराम के मन में फिर भी करूणा हैं वे महर्षि एवं देवताओं की बात मानते हैं किंतु भीष्म हठवादी हैं। ऋचीक, नारद आदि जैसे ऋषियों की, देवताओं की और यहां तक माता गंगा की बात उन्होंने नहीं मानी।

इत्यवोचमहं तांष्च क्षत्र धर्मव्पयेक्षया ।
मम व्रतमिदं लोके नाहं युध्दात् कदाचन ।
विमुखो विनिर्वर्तेयं प्रष्ठतोऽभ्याहत: शरै: ।

तब वे सब परशुराम से ही युद्ध निवृत्ति की प्रार्थना करते हैं और कहते हैं कि विप्रो का हृदय नवनीत वत कोमल होता है आप शांत हो जाए। भीष्म आपके लिए अवध्य हैं और यह कहते हुए वे सब उन्हें घेरकर खड़े हो गए और उनसे अस्त्र रखवा लिए।

एवं वुव्रन्तस्ते सर्वे प्रतिरूधय रणाजिरम् ।
न्यासयां चक्रिदे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दम् ॥31॥

तब उनको युद्ध से निवृत्त देखकर ही भीष्म युद्ध से निवृत्त हुए। भीष्म ने यहां एक ही मर्यादा रखी कि युध्द के प्रारंभ में भी वे गुरू का आशीर्वाद लेने गए और समापन पर भी उन्होंने चरण वन्दना की। परशुराम के हृदय में कहीं भी मालिन्य नहीं है। वे भीष्म की प्रशंसा करते हुए कहते है इस युध्द में तुमने मुझे बहुत संतुष्ट किया है। जाओ भीष्म मैं तुम पर प्रसन्न है पृथ्वी पर तुम्हारे सदृश कोई क्षत्रिय नहीं है।

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रिय: पृथिवीचर: ।
गम्यतां भीष्म युध्देऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृषं त्वया ॥ 36॥

युद्ध के बाद परशुराम अम्बा से कहते हैं कि मैं तेरा कार्य पूरी शक्ति लगाकर भी नहीं करवा पाया। अब तुम भीष्म की शरण में जाओ या जहां इच्छा है वहां जाओ। अम्बा ने कहा आपने मेरे लिए महान उद्यम किया जो मैंने प्रत्यक्ष देखा है। अब भीष्म या शाल्व की शरण में जाने का प्रश्न ही नहीं। अब मैं वहां जाउंगी जहां तप करके शक्ति प्राप्त कर स्वयं भीष्म का वध कर सकूं और वह क्रोध पूर्वक वहां से चली गई। परशुराम भी शिष्यों सहित महेन्द्र पर्वत पर चले गए। इस घटना से भी भीष्म का गौरव नहीं बढ़ा है।

दोनों युवा रानियों के साथ मिलकर युवा राजा भोग विलास में निमग्न हो जाता है और यह क्रम सात वर्ष चलता है जिससे विचित्रवीर्य को राजयक्ष्मा रोग हो जाता है नि:संतान ही वे इस लोक से प्रस्थित हो जाते हैं।

ताभ्यां सह समा: सप्त विहरन् पृथिवीपति: ।
विचित्रवीर्यस्तरूणो यक्ष्मणा समगृहयत॥70/102॥

सुहृदां यतमानाना माप्तै सह चिकित्सकै:।
जगामास्तमिवादित्य: कौरव्यो यमसादनम्।71/102॥

भीष्म अपने अनुज के लिए और सत्यवती अपने पुत्र और पुत्र वधुओं के लिए शोक में डूब जाती है। तब सत्यवती भीष्म व पुत्रवधुओं को सांत्वना देती है सत्यवती भीष्म से आग्रह करती है कि वे अपने पिता को दिए गए वचन के अनुसार कुरूकुल की रक्षा के लिए राज्य ग्रहण कर लें और आपदधर्म का पालन करते हुए अपने अनुज की पत्नियों को स्वीकार कर संतानोत्पत्ति करें। भीष्म इसे अस्वीकार कर देते हैं। सत्यवती उनसे किसी राजकन्या से विवाह की प्रार्थना करती है किंतु भीष्म अडिग रहते हैं। यह भीष्म के चरित्र की महानता है कि ऐसी विपत्ति में भी वे अपने प्रण पर दृढ़ रहते हैं उन्हें न राज्य का लोभ डिगाता है और न स्त्री की कामना। व्यास जी ने इस प्रकरण का विस्तार से वर्णन किया है जो यहां उद्धृत है। सत्यवती के पिता के वचन का तर्क धर्म का तर्क आपदधर्म का तर्क माता की आज्ञा का तर्क और प्रार्थना भी भीष्म को प्रभावित नहीं करते-

शांतनोधर्म नित्यस्य कौरव्यस्य यषस्विन:।
त्वयियिपिण्डष्च कीर्तिष्च संतानं च प्रतिष्ठितम्।3/103॥

राज्ये चैवाभिषिच्यस्व भारताननुषाधि च।
दारांष्च कुरू धर्मपा मा निमज्जी: पितामहान।

इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काषिराज सुते शुभे।
रूपयौवन संपन्ने पुत्र कामे च भारत।9/103॥

तयोरूत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य नः।
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहार्हसि॥10॥

सत्यवती के इस प्रस्ताव पर भीष्म ने जो उत्तर दिया है वह दृष्टव्य है-
परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद् वाप्यधिकतमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन॥15॥

त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापष्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद् रूपं वायुः स्पर्षगुणं त्यजेत्॥16॥

प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतु स्तथोष्मताम्।
त्यजेच्छब्दं तथाऽऽकाषं सोमः शीतांषुता त्यजेत्।17॥

विक्रमं वृत्रहा जहयात् धर्मं जहयाच्च धर्मराट्।
न त्वहं सत्यमुत्सृष्टुं व्यवसेयं कथंचन॥18॥

सत्यवती आपदधर्म की दुहाई देती है -

जानामि चैवं सत्यं तनमर्दथे यच्चभाषितम्।
आपद्धर्म त्वमवेक्ष्य वह पैतामहीं धुरम्।21/103॥

तब भीष्म कहते हैं कि हे राजमाता आप धर्म को नष्ट न करें क्योंकि क्षत्रियों को सत्य से गिरना शोभा नहीं देता।

राज्ञि धर्मानवेक्षस्व मा नः सर्वान् व्यनीनषः।
सत्याच्युति : क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रषस्यते॥24॥

तब भीष्म माता की दीनता को देखते हुए कुरूवंश के भविष्य को देखते हुए और धर्म को देखते हुए सुझाव देते हैं कि किसी सुयोग्य ब्राह्मण के द्वारा नियोग पद्धति से रानियों से पुत्रोत्पत्ति कराना उचित रहेगा। सत्यवती यह प्रस्ताव मान लेती है किंतु तभी लज्जित होकर यह रहस्योद्घाटन करती है कि कुमारी अवस्था में पराशर ऋषि के संयोग से उसके पुत्र का जन्म हुआ था वही आज व्यास ऋषि हैं एक ही माता से उत्पन्न होने के कारण वह भी विचित्रवीर्य के भाई जैसे हुए अत: यदि उन्हें नियोग कार्य में नियुक्त किया जाए तो कैसा रहेगा? भीष्म जी इस प्रस्ताव से सहमत होते हैं तब सत्यवती व्यास का आह्वान करती है माता की आज्ञा मानकर व्यासजी नियोग पद्धति का आश्रय ले दोनो रानियों से संतानोत्पत्ति के लिए स्वीकृति देते हैं किंतु कहते हैं कि उन्हें एक वर्ष तक मेरी बतायी हुई विधि से साधना करनी होगी। तब मैं नियोग करूंगा क्योंकि मेरे समीप कोई स्त्री मेरे तेज के कारण नहीं आ सकती। किंतु सत्यवती को जल्दी पड़ी थी उसने तुरंत यह कार्य करने का आग्रह किया और जिसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ अंबिका ऋषि के काले वर्ण पीली जटायें और तेजस्वी नेत्र देखकर भयवश नेत्र बंद किये रही व्यास ने बाद में माता को बताया कि माता के दोष से इसका पुत्र अंधा होगा। अंबालिका उन्हें देखकर भय से पीली पड़ गयी उसके लिए भी व्यास जी ने कहा कि इसकी संतान भी पांडु वर्ण की होगी और उसका नाम भी पाण्डु होगा। तीसरी बार मां के आग्रह से व्यास जी पुन: अंबा के पास गए किंतु उसने अपने वस्त्राभूषण पहनाकर शयनागार में दासी को भेज दिया। उससे जो संतान उत्पन्न हुई वह महात्मा विदुर थे जो धर्म राज के अवतार थे जिन्हें माण्डव्य ऋषि के शाप से पृथ्वी पर आना पड़ा।

ब्राह्मणो गुणवान् कष्चिद् धनेनोपनिमंत्र्यताम्।
विचित्रवीर्य क्षेत्रेषु य: समुत्पादयेत प्रजा:।2/104॥

सत्यवती ने कहा -

तव ह्यनुमते भीष्म नियतं स महातपा।
विचित्रवीर्य क्षेत्रेषु पुत्रानुत्पादष्यिति॥

भीष्म का उत्तर था-

तदिदं धर्मयुक्तं च हितं चैव कुलस्य न:।
उक्तं भवत्या यच्छ्रेय स्तन्मह्यंरोचते भृषम्।22/104॥

इसके पश्चात कुमारों की उत्पत्ति होती है भीष्म को राजकार्य पुन: देखना पड़ता है वे पूरे मनोयोग से यह कार्य करते हैं जिससे राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति होती है।जैसा कि व्यास जी ने 108 वे अध्याय में कहा है-

भीष्मेण धर्मतो राजन् सर्वत: परिरक्षिते।
बभूव रमणीयष्च चैत्य यूपषतांकित:।13/108॥

स देष: परराष्ट्राणि विमृज्याभिप्रवर्धित:।
भीष्मेण विहते राष्ट्रे धर्मचक्रमवर्तत॥14/108॥

उनके राज्य की सुव्यवस्था देखकर और समुन्नति देखकर लोग कहने लगे थे कि वीरों को जन्म देने वाली काशीराज की पुत्रियां हैं देशों में सर्वश्रेष्ठ कुरूजांगल देश है धर्मज्ञों में सर्वश्रेष्ठ भीष्म हैं और नगरों में सर्वश्रेष्ठ हस्तिनापुर है।

पालक के रूप में भीष्म का बहुत लम्बा समय जाता है। पहले वे अपने अनुजों को पालते हैं, उन्हें संरक्षित और शिक्षित करते हैं फिर पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुर का पालन-पोषण करते हैं और अन्त में पाण्डु की मृत्यु के बाद जब धृतराष्ट्र राजा बनाए जाते हैं तब फिर राज्य की देख-रेख और संरक्षण करते हैं जब तक युधिष्ठिर और बाद में दुर्योधन युवराज नहीं बना दिये जाते हैं।

धृतराष्ट्रष्च, पाण्डुष्च, विदुरष्च महामति: ।
जन्म प्रभृति भीष्मेण पुत्रवत् परिपालित:।17।
संस्कारै संस्कृतास्ते तु वृताध्ययन संयुता:।
श्रम व्यायाम कुषला: समपद्यन्त यौवनम्॥

विदुर का वे विशेष सम्मान करते हैं। विभिन्न अवसरों पर उसकी सलाह लेते हैं। व्यासजी कहते हैं कि धृतराष्ट्र व पाण्डु के विवाह की योजना बनाते समय वे विदुर से चर्चा करते हैं।

कन्ये वरयितव्यास्ता: इत्यहं धीमतां वर ।
सन्तानार्थं कुलस्यास्य यद्वा विदुर मन्यसे॥ ।7।

विदुर उन्हें अपना माता, पिता और गुरू सब कुछ मानते हैं-

भवान् पिता, भवान् माता, भवान् न: परमो गुरू:।
तस्मात स्वयं कुलस्यास्य विचार्य कुरू यध्दितम्।8/109

गांधार नरेश सुबलराज की पुत्री से विवाह प्रस्ताव भेजने में उस कन्या के गुणों की ख्याति और उसके द्वारा शिवजी से तपस्या कर प्राप्त किया गया 100 पुत्रों का वर भीष्म के निर्णय के कारण बने।

अथ शुश्राव विप्रेभ्यो गांधारीं सुबलात्मजाम्।
आराध्य वरदं देवं भग त्रिनेत्र हरं हरम् ॥

गांधारी किल पुत्राणां शतं लेभे वरं शुभम्।
इति शुश्राव तत्वेन भीष्म: कुरू पितामह: ॥
ततो गांधार राजस्य प्रेषयामास भारत ।

धृतराष्ट्र की अचक्षुता के कारण पहले तो सुबलराज सोच विचार में पड़ गए किन्तु बाद में कुरू कुल की ख्याति और चरित्र देखकर उन्होने अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया।

अचक्षुरिति तत्रासीत् सुबलस्य विचारणा। ।11।

कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुध्दया तु प्रसमीक्ष्य स: ।
ददौ ताम धृतराष्ट्राय गांधारीं धर्मचारिणीम्॥

पाण्डु का प्रथम विवाह तो शूरसेन की पुत्री और राजा कुन्तिभोज की पालिता पुत्री पृथा के साथ स्वयंवर विधि से हो गया था किन्तु माद्री के साथ विवाह के लिये उन्होंने उसके भाई मद्र नरेश शल्य से याचना की थी। वे स्वयं ब्राम्हणों, ऋषियों, सचिवों और सेना के साथ मद्र देश गए थे। शल्य ने विनम्रता से कहा हमारे पूर्वजों ने विवाह में धन लेकर कन्या देने की रीति बनाई है। अब वह भली हो या बुरी मुझे उसी पर चलना है। भीष्म ने प्रसन्नतापूर्वक इस रीति का पालन किया और प्रभूत धन दिया और शल्य ने भी प्रसन्नतापूर्वक पाण्डु के लिये अपनी कन्या दे दी।

सोऽमात्यै:स्थविरै: सार्धं ब्रारहम्णैष्च महर्षिभि: ।
बलेन चतुरंगेण ययौ मद्रपते: पुरम् ।2/112॥

श्रूयते भवत: साध्वी स्वसा माद्री यशस्विनी ।
तामहं वरयिष्यामि पाण्डोरर्थं यषस्विनीम् ॥6/112॥

तत प्रगृह्य धनं सर्वं शल्य: सम्प्रीतमानस: ।
ददौ तां समलंकृत्य स्वसारं कौरवर्षभे ॥16/112॥

इसके पश्चात पुत्रवत् विदुर जी का भी विवाह उन्होंने ही कराया। राजा देवक के यहां जो पारषव कन्या थी उससे उनका विवाह संपन्न कराया।

अथ पारषवीं कन्यां देवकस्य महीपते: ।
रूपयौवन संपन्नां स शुश्रावापगासुत: ॥12/113॥

ततस्तु वरयित्वा तामानीय भरतर्षभ: ।
विवाहं कारयामास विदुरस्य महामते ॥13/113॥

यह भीष्म के द्वारा प्रदत्त संस्कार, शिक्षा दीक्षा और संरक्षण का ही फल था कि पाण्डु अजेय महारथी बन गए और विदुर शीर्षस्थ नीतिज्ञ और धर्मशास्त्री। पाण्डु ने दिग्विजय की। उन्होंने माद्री से विवाह के एक माह बाद ही अपनी जय यात्रा प्रारंभ की और पहले दषार्ण प्रदेष को जीता फिर मगध पर आक्रमण कर पापी राजा दीर्घ का उसकी राजधानी राजगृह में वध किया मिथिला जाकर विदेह वंशियों को हराया और काशी सुह्म तथा पुण्ड्र राज्यों को जीता और विपुल धन लाए। कुरु की कीर्ति दिग दिगंत में फैलायी। दिग्विजयी पाण्डु का स्वागत करते हुए भीष्म ने उन्हें गले लगा लिया और उनके हर्ष के आंसू बह चले।

प्रमृद्य परराष्ट्राणि कृतार्थं पुनरागतम् ।
पुत्रमाष्लिष्य भीष्मस्तु हर्षादश्रूण्यवर्तयत् ॥44॥

धृतराष्ट्र चूंकि अंधे थे अत: ज्येष्ठ होते हुए भी उन्हें राजा नहीं बनाया गया अत: अनुज पाण्डु राजा बने। विदुर चूंकि दासी से उत्पन्न थे अत: उन्हें भी राजा नहीं बनाया गया यह ऐसा महाभारत में उल्लेख है।

किन्तु दुर्भाग्य से वन में मृगयार्थ गए हुए पाण्डु क्रीड़ारत मृग और मृगी को बाण विद्ध कर देते हैं और तब उन्हें ज्ञात होता है कि वे किन्दम ऋषि को आहत करने का अपराध कर बैठे हैं। किन्दम ऋषि जो मृग रूप में अपनी पत्नी के साथ क्रीड़ा कर रहे थे मरते समय पाण्डु को श्राप देते हैं कि जिस स्थिति में मेरी मृत्यु हो रही है तुम्हारी भी होगी। इस श्राप का उल्लेख इस प्रकार है -

वसमानमरण्येषु नित्यं शमपरायणम् ।
त्वयाहं हिंसितो यस्मात् तस्मात् त्वामप्यहं शपे ॥26॥

द्वयोर्नृषंस कर्तारमवषं काममोहितम् ।
जीवितान्तकरो भाव एवमेवागमिष्यति ॥27॥

प्रियया सह संवासं प्राप्य कामविमोहित: ।
त्वमप्यस्यामवस्थायां प्रेतलोकं गमिष्यति ॥31॥

पाण्डु को महान पश्चाताप होता किंतु ऋषि का शाप अमोघ है वे संसार से विरक्त हो जाते हैं और सन्यास का निर्णय लेते हैं किंतु कुन्ती और माद्री उन्हें समझाती है कि वे वानप्रस्थ ग्रहण करें और हम दोनों भी साध्वी रहकर आपका सहयोग देते हुए तपस्या करेंगी। पाण्डु यह स्वीकार लेते हैं। राज्य त्याग देते हैं अब वन में निवास रहता है। इस शून्य को भरने के लिए अंधे होते हुए भी धृतराष्ट्र के सिर पर राजमुकुट रख दिया जाता है। वे पितामह भीष्म और विदुर की सहायता से राज्य करने लगते हैं। राजकोष, राजस्व, अमात्य और भृत्य वर्ग विदुर देखते हैं तो अन्य राज्यों से संबंध और सेना इत्यादि के मामले भीष्म जी देखते हैं।

पाण्डु को वन में रहते वर्षों बीत जाते हैं। ऋषि गण उन्हें बताते हैं कि उनका संतान योग है तो वे चकित रह जाते हैं तब कुन्ती दुर्वासा प्रदत्त देवावाहन मंत्र का रहस्य उनसे प्रकट करती है और पाण्डु की सम्मति से उसके प्रयोग द्वारा धर्म से युधिष्ठिर, पवन से भीम और इन्द्र से अर्जुन को पुत्र रूप में प्राप्त करती है। अश्विनी कुमारों से माद्री को नकुल और सहदेव जुड़वे पुत्र प्राप्त होते हैं। जब युधिष्ठिर सोलह, भीम पंद्रह और अजुर्न चौदह वर्ष के हो गए तब एक दिन एकांत में माद्री को पाकर राजा पाण्डु काम के वश में हो गए और उनका आलिंगन किया। माद्री ने विरोध भी किया तभी शाप फलित हो गया और राजा पाण्डु की मृत्यु हो गयी।

पूर्णे चतुर्दषे वर्षे फाल्गुनस्य च धीमत: ।

रहस्येकां तु तां दृष्टवा राजा राजीवलोचनाम् ।
न शषाक नियंतुं तं कामं कामवषीकृत: ॥7॥

स तया सह संगम्य भार्यया कुरू नंदन ।
पाण्डु परमधर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा ॥12॥

उनका दाह संस्कार ऋषि मुनियों ने शतश्रृंग पर्वत पर ही कर दिया। माद्री दु:ख वश उन्हीं के साथ सती हो गयी। तब वे ऋषि गण कुन्ती और उसके पांचो पुत्रों को लेकर हस्तिनापुर आए। वे वहां पाण्डु की मृत्यु के सत्रहवें दिन पहुंचे।

पितृलोकं गत: पाण्डुरित: सप्तदषेऽहनि ।29/125।

हस्तिनापुर शोक में डूब गया। भीष्म को भारी दुख हुआ उन्होंने उनका संस्कार करवाया और पुत्रों को अपने संरक्षण में लिया इस प्रकार तीसरी पीढ़ी में भी आकर भीष्म को पुन: कुमारों को बड़ा करना पड़ा उनकी शिक्षा दीक्षा देखनी पड़ी।

पाण्डु की मृत्यु हो जाने के बाद उनके श्राद्ध कर्म के उपरांत व्यास जी ने माता सत्यवती को समझाया था। कि सुख के दिन बीत गए हैं और आने वाला समय क्रमश: दारूण से दारूणतर होने जा रहा है। पापपूर्ण काल आ गया है और पृथ्वी अपना यौवन खो बैठी है।

मायाविता पूर्ण नाना दोषों से युक्त धर्माचार से विरहित घोर समय में कुरू की ही अनीति से पृथ्वी पर महाविनाश उपस्थित होने वाला है ऐसा दृश्य देखने से पूर्व ही आप तपस्या हेतु वन में चली जायें। सत्यवती ने अपनी पुत्रवधुओं से भी यह बात बतायी और अंबिका से कहा कि तुम्हारा पौत्र अपनी कुनीति से भरतवंश को नष्ट करेगा। मैं अंबालिका को लेकर तपस्यार्थ जा रही हूं। तब अंबिका ने स्वयं भी साथ चलने का अनुरोध किया और वे तीनों वन जाकर घोर तपस्या करने लगीं और वहीं पर उन्होंने उत्तम गति प्राप्त की। इसका वृत्तांत महाभारत में इस प्रकार है-

अतिक्रांत सुखा: काला पर्युपस्थित दारूणा:।
श्वष्व पापिष्ठ दिवसा: पृथिवी गत यौवना॥6॥

कुरूणामनयच्चापि पृथिवी न भविष्यति।
गच्छ त्वं योगमास्थाय युक्ता वस तपोवने॥8॥

तथेत्युक्ता त्वम्बिकया भीष्म मामंत्र्य सुव्रता।
वनं ययौ सत्यवती स्नुषाभ्यां सह भारत॥12॥

ता: सुघोरं तपस्तप्त्वा देव्यो भरतसत्तम।
देहं त्यक्त्वा महाराज गतिमिष्टां ययुस्तदा॥13॥

इस प्रकार सत्यवती ने अकिंचनता साम्राज्य महिषीत्व, राजमातात्व तथा वैधव्य सब कुछ देख लिया और अंत में तपस्विनी बनकर प्राण त्यागे। पति, दोनों पुत्र और एक पौत्र की मृत्यु का दारूण दुख देखा। अंबिका और अंबालिका का जीवन भी दुखद है । विवाह से पूर्व अवष्य वे काशी में राज्य कन्या के रूप में सुख पूर्वक पली बढ़ी किन्तु विवाह के बाद दाम्पत्य सुख उन्होंने केवल सात वर्ष ही देख पाया। पति नि:संतान छोड़ गए। आपद्धर्म का निर्वाह कर नियोग से संताने प्राप्त की किंतु जंहा अंबिका ने अंधा पुत्र पाया वहीं अंबालिका ने पाण्डु रोग ग्रस्त। पाण्डु भी युवा अवस्था में शापवश कालकवलित हो गए। जीवन के अंतिम लगभग बीस वर्ष उन्हें वानप्रस्थ अवस्था उन्हें वन में ही बिताने पड़े यह भी माता अंबालिका के लिए कष्ट की ही बात थी।

भीष्म की गुणग्राहिता का परिचय इस बात से मिल जाता है कि बाल सखा द्रुपद से तिरस्कृत हस्तिनापुर आए हुए द्रोण का उन्होनें हार्दिक स्वागत किया और जब द्रोण ने अपनी व्यथा उनसे कही तो उन्होनें प्रार्थना की आप हस्तिनापुर में ही रहे। हमारे पुत्रों के आचार्य बने। आज से कुरू का सारा राज्य और वैभव आपका है और आपकी सेवा में है। प्रसन्न द्रोण आजीवन वहां रहे तो केवल भीष्म के कारण। ऐसे अलौकिक विद्या से संपन्न आचार्य को पूजकर भीष्म ने सुनिश्चित कर लिया कि पाण्डु और कौरव अजेय महारथी हो जाए और विप्रवर द्रोण ने भी ऐसा ही किया। भीष्म के इस अवसर के उद्गार दृष्टव्य हैं -

कुरूणांमस्ति यद् वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम् ।
त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव ॥ 78॥

यच्चते प्रार्थितं ब्रह्मन कृतं तदिति चिन्त्यताम् ।
दिष्टया प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान् मेऽनुग्रह: कृत: ।79।

सत्यवती, अंबा और अंबालिका तीनों के वन गमन के पश्चात ही भीष्म के जीवन का दूसरा अध्याय समाप्त हो गया। पूर्व वर्तियों में या समवर्तियों में अब कोई नहीं रहा जिससे वे अपने मन की बात कह लेते । मैं मानता हूं कि भीष्म के जीवन का प्रथम अध्याय हैं देवव्रत, दूसरा अध्याय है भीष्म और तीसरा अध्याय है पितामह । जन्म से लेकर ब्रह्मचर्य तक की प्रतिज्ञा तक प्रथम अध्याय पूरा होता है और पाण्डु की मृत्यु और माता के वनगमन के बाद दूसरा अध्याय भी पूर्ण हो जाता है। अब पितामह के सामने

है कुरूशासनस्थ अंधा नृपति, अत्यंत महत्वाकांक्षी उसका मदोन्नमत्त पुत्र, उसका वीर सहायक कर्ण और कूटनीतिज्ञ शकुनि।

शिक्षा समाप्ति पर गुरू दक्षिणा के रूप में द्रोण ने द्रुपद को बांध लाने की मांग की जो पाण्डवों ने पूरी कर दी। उनका आधा राज्य लेकर द्रोण ने अपने पूर्व मित्र को मुक्त कर दिया। शिक्षा समाप्ति के एक वर्ष बाद युधिष्ठिर को युवराज बना दिया गया।

ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव ।
स्थापितो धृतराष्ट्रेण पाण्डुपुत्रों युधिष्ठिर ॥1/138॥

इस समय तक धृतराष्ट्र के मन में पाण्डु पुत्रों के प्रति द्वेष भाव नहीं था किंतु धीरे धीरे पाण्डवों के बढ़ते पराक्रम को देखकर और धनंजय कृत दिग्विजय को देखकर वे शंकित हो उठे और पाण्डवों के प्रति उनके भाव दूषित हो उठे।

ततो बल मतिख्यातं विज्ञाय दृढ़धन्विनाम् ।
दूषितः सहसाभावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु ॥

और इसके बाद शकुनि कृत कुचक्र, कूटनीतिज्ञ, कुणिक द्वारा मंत्रणा दुर्योधन की महत्वाकांक्षा और कर्ण का सहयोग यह सब मिलकर हस्तिनापुर में एक विषाक्त वातावरण का सृजन करने लगे। पाण्डवों को येन केन प्रकारेण हस्तिनापुर से हटाना था अतः छल से वारणावत भेज दिया गया जहां शकुनि ने गुप्त रूप से म्लेच्छ पुरोचन द्वारा लाक्षा गृह का निर्माण कराया जिसकी अग्नि से भस्म होने से पाण्डव केवल विदुर की सुनीति से बच सके और गुप्त रूप से अन्यत्र निवास करने लगे। हस्तिनापुर में उन्हें मृत समझ लिया गया। वे तभी प्रकट हुए जब द्रुपद कन्या याज्ञसेनी का विवाह स्वयंवर में लक्ष्य भेदकर विप्र रूप धारी अर्जुन ने कर दिया।

वारणावत की लाक्षागृह दाह की घटना भीष्म के जीवन की एक बड़ी कूटनीतिक विफलता है जिसे वह स्वयं भी स्वीकार करते हैं। जब वे दुर्योधन से कहते हैं कि इस घटना के बाद वे लोगों से दृष्टि तक नहीं मिला पाते -

यदा प्रभृति दग्धास्ते कुन्तिभोज सुता सुता ।
तदा प्रभृति गान्धारे न शक्नोम्यभिवीक्षितुम ॥14/202॥

यह विफलता इस कारण से और भी बढ़ जाती है कि लाक्षा गृह निर्मित होता रहा, पाण्डवों को वहां प्रेषित करने के लिए वारणावत की सुंदरता का प्रचार होता रहा । किंतु शकुनि, दुर्योधन और पुरोचन की

कूटयोजना का ज्ञान उन्हें नहीं हुआ। इस दृष्टि से यहां विदुर उनसे आगे निकल गए हैं उन्हें न केवल कूटयोजना का ज्ञान हो जाता है बल्कि वे इसके प्रतिकार की अमोघ व्यवस्था भी कर लेते हैं और पाण्डवों को सांकेतिक भाषा में सावधान भी कर देते हैं। वे भीष्म को भी पाण्डवों के जीवित होने के बाद तब बताते हैं जब रोते हुए भीष्म दिवंगत मान लिए गए पाण्डवों को जलांजलि देने को उद्यत हैं उस समय उन्हें एक ओर ले जाकर विदुर धीमे से पाण्डवों के जीवित होने की सूचना देते हैं और उन्हें जलांजलि करने से रोक देते हैं। वे कहते हैं कि मैंने समय रहते सारी व्यवस्था कर दी थी। तब भीष्म का शोक दूर होता है।

मा शोचीस्त्वं नरव्याघ्र जहि शोकं महाव्रत ।
न तेषां विद्यते पापं प्राप्तकालं कृतं मया॥ 169 वां अध्याय ॥

द्रुपद की राजधानी काम्पिल्य पुरी में द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर जब पाण्डव प्रकट हुए तब दुर्योधन के खेमे में खलवली मच गई। उस समय विदुर तथा भीष्म ने राजा धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन को समझाया कि वे कुल के हित के लिए पाण्डवों को सम्मान सहित मिलाकर आधा राज्य दे दें। और वारणावत का कलंक धो लें। भीष्म के प्रयासों से ही उस समय पाण्डवों को बुलाकर धृतराष्ट्र द्वारा खाण्डव प्रस्थ का राज्य दिया गया। जहां उन्होंने अपने उद्यम से वन भूमि को भी समृद्ध देश में परिवर्तित कर दिया और हस्तिनापुर से भी मनोहर इन्द्रप्रस्थ नगर बसा लिया। भीष्म द्वारा दुर्योधन को प्रबोध व्यास द्वारा इन शब्दों में वर्णित है।

न रोचते विग्रहो में पाण्डुपुत्रै: कथंचन ।
यथैव धृतराष्ट्रों मे तथा पाण्डुरसंषयम् ॥ 1/202॥

अधर्मेण च राज्यं त्वं प्राप्तवान भरतर्षभ ।
तेऽपि राज्यमनुप्राप्ता: पूर्वमेवेति मे मति: ॥7/202॥

यदि राज्यं न ते प्राप्ता: पाण्डवेया: यषस्विन: ।
कुत एव तवापीदं भारतस्यापि कस्यचित् ॥6॥

कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम् ।
नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्ये जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ॥10॥

न चापि तेषां वीराणां जीवतां कुरूनंदन ।
पित्रयोष:षक्य आदातुमपि वज्रभृतास्वयम् ॥17॥

यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे ।
क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम् ॥19/202॥

पाण्डवों के प्रकट होते ही दुर्योधन और उसके सहायकों को भारी निराशा हुई। इस समय भी भीष्म और विदुर के प्रभाव के कारण ही पाण्डवों को सम्मान सहित बुलाकर आधा राज्य प्रदान किया गया। वे खाण्डव प्रस्थ के अधिपति बने और इन्द्रप्रस्थ को राजधानी बनाकर राज्य करने लगे। श्री कृष्ण की सहायता से पाण्डवों ने दिग्विजय को और युधिष्ठिर ने चक्रवर्ती होकर राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया।

युधिष्ठिर ने जो राजसूय यज्ञ किया उसमें स्वयं व्यास जी ब्रह्मा बने और याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्म ज्ञानी उसके अध्वर्यु बने, व्यास शिष्य पैल होता बने और धौम्य ऋषि भी होता बने। हमें विशेष बात यह ज्ञात होती है कि यज्ञ में अन्य सभी वर्णों के अतिरिक्त शूद्र भी बुलाए गए थे।

आमंत्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान् भूमिपानथ ।
विषष्च मान्यान् शूद्रांष्च सर्वानानयतेतिच ॥

पितामह, राजा धृतराष्ट्र, विदुर जी एवं आचार्य गण, अश्वत्थामा तथा सभी भाइयों को यज्ञार्थ निमंत्रित करने के लिए नकुल को हस्तिनापुर भेजा गया था और वे आए भी। युधिष्ठिर इतने उदार थे कि उन्होंने इन विरोध मानने वाले कौरव भाइयों को भी अत्यंत महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व दिए। भोजन संबंधी व्यवस्था दुशासन को दी गई। ब्राह्मण का सत्कार अश्वत्थामा को, राजाओं का स्वागत संजय को, स्वर्ण तथा रत्नों की व्यवस्था और दक्षिणा का कार्य कृपाचार्य को और आय व्यय का समस्त भार विदुर को दिया गया था। दुर्योधन को समस्त राजाओं द्वारा लाए जाने वाले उपहारों को ग्रहण करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था जबकि श्रीकृष्ण ने अपने लिए केवल ब्राह्मणों के पैर धोने का काम लिया था। भीष्म और द्रोण को संपूर्ण यज्ञ की व्यवस्था में और कर्तव्य के ज्ञान व न्यूनता के शोधन के लिए नियुक्त किया गया था।

यहां जब अग्र पूजा का प्रष्न उठा तब युधिष्ठिर ने पितामह से ही राय ली थी। और उन्होंने धर्म तत्व का निष्चय कर श्रीकृष्ण की अग्र पूजा को ही सम्मत किया था । भीष्म के शब्द थे कि आचार्य, ऋत्विज, स्नातक, मित्र, दामाद, राजा या प्रिय व्यक्ति को अर्घ्य दिया जाना चाहिए। और जहां सब एक साथ उपस्थित हों वहां सबसे वरिष्ठ और सबसे समर्थ को यह मान दिया जाना चाहिए। अपना निश्चित मत व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि -

ततः भीष्म शान्तनवो बुध्या निष्चित्य वीर्यवान ।
अमन्यत तदा कृष्ण महणीयतमं भुवि ॥27॥

उनकी अनुज्ञा के बाद ही सहदेव ने भगवान कृष्ण को अर्घ्य दिया था।

श्रीकृष्ण की अग्र पूजा पर शिशुपाल ने अमर्ष में भरकर जब इस कार्य की निंदा की तब भीष्म ने उसके आक्षेपों का उत्तर देते हुए कृष्ण की महानता व पूज्यता को पुनः स्पष्ट किया क्योंकि वे श्रीकृष्ण को तत्व से जानते है वे न केवल उनके अवतार एवं सगुण स्वरूप से परिचित हैं अपितु उनके निर्गुण, निराकार, एवं व्यापक परब्रह्म स्वरूप से भी परिचित है।

त्रयानामपि लोकानामर्चनीयो महाभुजः । 9/38॥

जगतः सर्वं च वार्ष्णेये निखिलो प्रतिष्ठितम् । 10/38॥

एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः ।
परष्च सर्वभूतेभ्यस्तस्माद् पूज्यतमोऽच्युत ॥24/38॥

जब शिशुपाल वहॉ स्वयंभू सेनापति बनकर राजाओं को वृष्णि वंशियों व पांडवों के विरूद्ध युद्ध हेतु उत्तेजित करता है तो वहॉ नृप मंडल के विक्षुब्ध होने से युधिष्ठिर चिंतित हो उठते हैं तब भीष्म उनको आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि तुम चिंता न करो। हरि की अग्र पूजा करके मैंने इसकी व्यवस्था पहले ही कर ली हैं क्योंकि सिंह को मारने में श्वान कभी सफल नहीं हो सकता।

मा भैस्त्वं कुरूषार्दूलन श्वा सिंहं हंतुमर्हति।
षिवः पन्थाः सनीतोऽत्र मया पूर्वतरं कृतः॥6/39॥

तब कुरद्व शिशुपाल भीष्म पर भी नाना प्रकार के घृणित आक्षेप लगाकर अपनी नीचता का परिचय देने लगता है। संपूर्ण महाभारत में भीष्म सबके सम्मानित रहे हैं उन पर ऐसे घृणित आक्षेप केवल शिशुपाल जैसा मूढ ही लगा सकता था। क्योंकि वह तो श्रीकृष्ण तक को अपमानित करने में नहीं चूका। वह भीष्म को नपुंसक बताता है। उनके ब्रम्हचर्य का उपहास करता है। अम्बा हरण का दोष बताता है और व्यासकृत नियोग की निंदा करता है।

युक्त मेतत तृतीयायां प्रकृतौ वर्ततां त्वया।
वक्तुं धर्मादपेतार्थं त्वं हि सर्वकुरूत्तम॥2/41॥

अन्य कामा हि धर्मज्ञा कन्यका प्राज्ञमानिनां।
अम्बा नामेति भद्रं कथं सापहृता त्वया॥22/41॥

कोहि धर्मोऽस्ति ते भीष्म ब्रम्हचर्यमिदं वृथा।
यद् धारयसि मोहाद् व क्लीवात् वा न संषय:॥25/41॥

वह कहता है कि तुम संतानहीन हो और अनपत्य को श्रेष्ठ लोक नहीं मिलते उसके वृतादि निष्फल हैं।

व्रतोपवासै र्वहुभि: कृतं भवति भीष्म यत्।
सर्वं तदनपस्यस्य मोघं भवति निष्चयात्॥28॥

यह सब सुनकर भीम को अत्यंत क्रोध आता है किंतु पितामह यह सब सहन कर उन्हें भी शिशुपाल के जन्म का वृतान्त तथा मृत्यु का रहस्य बतलाते हुए शांत रहने को कहते हैं। शिशुपाल भीम को भी कुछ नहीं समझता। भीष्म भीम को समझाते हुए कहते हैं कि भारत भर के क्षत्रियों में ऐसा कौन है जो मेरी निंदा कर सके और जीवित बच जाए। किंतु यह निष्चय ही गोंविद के तेज का ही अंश धारण कर रहा है जिसे वे आज पुन: समेट लेना चाहते हैं।

को हि मां भीमसेंनाद्य क्षितावर्हति पार्थिव:
क्षेप्तु कालपरीतात्मा यथेष कुलपांसन॥2॥

एष हृयस्य महा बाहुस्तेजोऽषंष्च हरे धुरवम्।
तमेव पुनरादातुमिच्छत्युत तथा विभु:॥3॥

इस प्रकार वे शिशुपाल के जन्म का भी रहस्य जानते हैं और मृत्यु का भी। वे तब तक उत्तेजित नहीं होते जब तक वातावरण नियंत्रण में है लेकिन जब कुछ अन्य राजा भी शिशुपाल के समर्थन में अपनी भंगिमाएं प्रदर्शित करते हैं तब वे क्रुद्ध हो जाते हैं। और विशेषत: शिशुपाल की इस बात से कि उनका जीवन राजाओं की इच्छा पर निर्भर करता है वे सिंह की भांति गर्जना करके बोलते हैं कि वे इन राजाओं को तिनके के बराबर भी नहीं समझते ।

इच्छतां किल नामाहं जीवाम्येषां महीक्षिताम्।
सोऽहं न गणयाम्येतां स्तृणेनापि नराधिपान्॥34॥

भीष्म की इस बात से अनेक राजा क्रुद्ध हो गए विरोध के स्वर उठने लगे कुछ उनकी निंदा करने लगे और कुछ ने कहा कि यह वृद्ध भीष्म

अभिमानी है और क्षमा के योग्य नहीं है। यह पशुवत वध योग्य है। तब भीष्म ने कहा कि मैं सबको चुनौती देता हूं और मैंने अपना यह पैर तुम्हारे सिर पर रख दिया है तक सब भूपाल सहमकर चुप हो जाते हैं।

क्रियतां मर्घ्नि वो न्यस्तं मयेदं सकलं पदम्॥40॥

शिशुपाल पुन: कृष्ण की निंदा करता हुआ उनको यु हेतु आहूत करता है और तब श्रीकृष्ण उसके दोषों को गिनाते हुए कहते है कि अब वे माता सात्वती को दिए गए वचन से मुक्त हो गए हैं और सब राजाओं के समक्ष चक्र से उसका सिर काट लेते हैं।

राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने हस्तिनापुर से इंद्रप्रस्थ गए दुर्योधन ने जब वहॉ राजा युधिष्ठिर का तेज प्रभाव और अतुल राज्य लक्ष्मी देखी तो वे ईर्ष्या व लोभ से जल उठा और बेचैन हो गया। लोक प्रचलित धारणा की उसे भ्रमवश जल में गिरते देख द्रोपदी ने उपहासपूर्वक कहा था कि अंधों के अंधे ही होते हैं सर्वथा मिथ्या है। महाभारत में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। वहां तो कहा गया है कि दुर्योधन के जल में गिरने पर भीमसेन उनके सेवक अर्जुन तथा नकुल व सहदेव हॅस पडे। द्रोपदी का वहॉ नाम भी नहीं है।

जले निपतितं दृष्टवा भीमसेनो महाबल:
जहास जहसुष्चैव किंकराष्च सुयोधनम्॥7॥

अर्जुनष्च यमौ चोभौ सर्वे ते प्राहसंस्तदा॥
नामर्षयत ततस्तेषांमवहासममर्षण:॥9॥

यह तो हस्तिनापुर आकर जब उसने शकुनि की मंत्रणा के अनुसार युधिष्ठिर को द्यूत क्रीडा के लिए बुलाने के लिए अपने पिता धृतराष्ट्र से आग्रह किया और जब उन्होंने उसे समझाते हुए मना किया और पांडवों जैसे भाईयों से द्रोह न करने की सलाह दी कहा कि वे कुरू वंश के वृक्ष की शाखाएं हैं उन्हें न काटो और यह भी कहा कि अन्य की संपत्ति पर लोभ दृष्टि रखना सज्जन का काम नहीं है। तब उन्हें उत्तेजित करने के लिए दुर्योधन अपने मन से यह लगा दिया कि उसके जल में गिरने पर भीम ने उसे धृतराष्ट्र पुत्र कहा और द्रोपदी सहेलियों के साथ हॅसी। धृतराष्ट्र ने तब भी कहा विदुर मेरे मंत्री हैं मैं उनसे सलाह लेकर कार्य करूँगा किंतु तब दुर्योधन ने आत्महत्या करने की धमकी दी और धृतराष्ट्र को उसका दुराग्रह मानना पड़ा ।

इस द्यूत का जितना विरोध विदुर ने किया जितना अन्य किसी ने नहीं किंतु यह विनाशक खेल हुआ शकुनि विश्व का श्रेष्ठतम अक्षविद है वह दुर्योधन की ओर से पांसे फेकता है और दाव दुर्योधन लगाता है जबकि यह नियम विरूद्ध था। धर्मराज ने इस पर आक्षेप भी किया था किन्तु वे द्यूत प्रेमी होने से इसमें प्रवृत हो गए और सर्वस्व हार बैठे।

अपने भाईयों सहित स्वयं को हारे तो अंतत: द्रौपदी को भी दांव पर लगाया और उसे हारने पर दुर्योधन द्वारा द्रौपदी का अपमान कराया गया।

भीष्म के संपूर्ण चरित्र में दुर्बलतम स्थल एक ही है और वह है द्यूत भवन में महान अनिष्टकारी और छलगर्भित द्यूत क्रीड़ा को जो कि शकुनि योजनानुसार प्रारंभ हुई थी रोकने में उनकी असमर्थता। इस द्यूत क्रीड़ा का प्रबल विरोध इसकी योजना बनाते समय, द्यूत क्रीड़ा के समय और इसके बाद द्रौपदी के अपमान के समय विदुर तो करते दिखाई देते हैं जिससे उनकी धर्मप्रियता स्पष्टवादिता और निर्भयता प्रमाणित होती है किंतु भीष्म मौन धारण किए हुए रहते हैं और यही स्थिति द्रोण तथा कृपाचार्य की भी है। इसका स्पष्टीकरण एक ही हो सकता है कि जिस प्रकार द्वंद युद्ध के लिए आव्हान करने पर क्षत्रिय के लिए अस्वीकार करने का कोई विधान नहीं था। द्यूत का आव्हान भी उस काल में इसी प्रकार रहा होगा। फिर धर्मराज स्वयं राजा थे उन्हें द्यूत क्रीड़ा और उसमें दाव लगाने का अधिकार था। किंतु यह भी सत्य है कि यह द्यूत नियम विरूध्द भी था। जैसा कि युधिष्ठिर ने प्रारंभ में ही कहा था कि दाव कोई लगाए और पासे कोई और फेंके यह उचित नहीं है किंतु युधिष्ठिर की द्यूत व्यसनता और उसके भयानक परिणाम यहां प्रमाणित हो गए किंतु फिर भी जब द्रौपदी को अपमानित किया जा रहा था तब उसके प्रश्न कि क्या वास्तव में जुंए में विजित की गई हूं का उत्तर सभा में बैठे किसी भी महापुरूष ने नहीं दिया। भीष्म भी उसके प्रश्न को यह कहकर टाल गए कि धर्म की गति बहुत सूक्ष्म होती है और इसका विवेचन में मैं असमर्थ हूं किंतु भीष्म के चरित्र को सबसे अधिक कलंकित करने वाला उनका वह वक्तव्य है जिसमें वह यह कहते हैं कि जो बलवान प्रतिपादित करता है वही धर्म लोक में मान्य है।

उक्तावानस्मि कल्याणि धर्मस्य परमा गति: ।
लोके न शक्यते ज्ञातुमपि विज्ञैर्महात्मभि: ॥14/69॥

बलवांष्च यथा धर्मं लोके पष्यति पूरूष: ।
स धर्मो धर्मबेलायां भवत्यभिहत: पर: ॥15/69॥

वे कहते हैं कि अब केवल युधिष्ठिर ही यह बता सकते हैं कि तुम द्यूत में जीती गई हो या नहीं ।

युधिष्ठिरस्तु प्रष्नेऽस्मिन् प्रमाणमिति मे मति: ।
अजितां वा जितां वेति स्वयं व्याहर्तुमर्हति ।21/69॥

उनके सारे जीवनकाल में यही एक ऐसा स्थल है जहां वे धर्म से चूके हैं। क्षत्रिय का धर्म ही रक्षा होता है यह बात वे स्वयं कहते हैं किंतु वे यहां अपनी पुत्रवधू की रक्षा करते हुए भी दिखाई नहीं पड़ते जब विदुर विरोध कर रहे थे तभी यदि भीष्म और द्रोण भी उठ खड़े होते तो किसी की शक्ति नहीं थी कि ऐसा अनाचार हो जाता। भीष्म की अजेयता देखते हुए उनकी एक हुंकार ही वहां पर्याप्त थी किंतु ऐसा नहीं हुआ। यही उनके चरित्र का महान दोष है जिसके लिए बाद में वे व्यथित भी रहे।

लगता है कि धर्म शास्त्र में उलझ गए जिसमें दास को सम्पत्ति का अधिकार है या नहीं इसका विवेचन किया गया है और स्त्री पुरूष की संपत्ति है कि नहीं इसका भी विवेचन किया गया है पुरूष के दास बनने पर भी उसका स्त्री पर अधिकार रहता है कि नहीं इन बारीकियों में उनकी बुद्धि उलझ गई और वे समयोचित कर्तव्य से चूक गए। यही उनके और श्रीकृष्ण के चरित्र में अंतर है। श्री कृष्ण के लिए धर्म शास्त्र तक ही सीमित नहीं है। वे व्यावहारिक हैं जबकि भीष्म अक्षरश: केवल शास्त्र का पालन करने वाले हैं ।

युद्ध को रोकने के अंतिम प्रयास के रूप में भगवान कृष्ण स्वयं पांडवों के दूत बनकर शांति प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गए और पांडवों का पक्ष रखा। अंत में उन्होंने यहां तक कहा कि पांच पांडवों के लिए पांच गांव ही प्रदान कर दिए जाएं किंतु अभिमानी दुर्योधन ने यह भी स्वीकार नहीं किया और कहा केशव बिना युद्ध के मैं सुई की नोंक के बराबर भूमि नहीं दूंगा। वह मूढ़ श्रीकृष्ण को बंदी बनाने के लिए भी षड़यंत्र रचने लगा जिसकी सूचना श्रीकृष्ण को चुपचाप सात्यकि ने दी वे क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने अपना विषाल स्वरूप प्रकट किया जिससे सभी सभासद भयभीत हो गए। लौटते हुए श्रीकृष्ण ने कर्ण को अपने ही रथ में कुछ दूर तक साथ लिया उसके जन्म का रहस्य खोला और कहा कि तुम अग्रज पांडव हो अनुजों से जाकर मिल जाओ। कर्ण ने विनम्रता पूर्वक अस्वीकार कर दिया तब श्रीकृष्ण ने जाते युद्ध की तिथि निश्चित कर दी बोले जाकर द्रोण भीष्म तथा कृपाचार्य से कहना कि यह माह जिसमें न शीत ने न उष्ण जिसमें चारा और ईंधन सरलता से मिल जाता है औषधियां तथा वन और फसलें समृद्ध है भूमि पर पंक नहीं है और जल सुलभ है अत: युद्ध के लिए उपयुक्त है आज से सातवें दिन अमावस्या होगी उसी दिन युद्ध प्रारंभ होगा ।

ब्रूया: कर्ण गत्वा द्रोणं शांतनवं कृपम्।
सौम्योऽयं वर्तते मास: सुप्रापयवसेन्धनम्॥16/142॥

सर्वोषधि वनस्फीत: फलवानल्पमक्षिक:।
निष्पंको रसवत्तोयो नत्युष्णषिषिर: सुखम्॥17/142॥

सप्तमच्चापि दिवसादमावस्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहु: शक्रदेवताम्॥18/142॥

और फिर पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना कुरू क्षेत्र में जाकर हिरण्वती नदी के तट पर अपना शिविर लगा देती है ।

आसाद्य सरितां पुण्यां कुरूक्षेत्रे हिरण्वतीम्॥7/152॥

सुरक्षा के लिए श्रीकृष्ण शिविरों के चारों ओर खाई खुदवा देते हैं

खनयामास परिखां केशवस्तत्र भारत॥8/152॥

महाभारत युद्ध में भी भीष्म केवल प्रतिज्ञाबद्धता के कारण ही भाग लेने को विवश हुए । जब दुर्योधन ने उनसे ग्यारह अक्षौहिणी कुरू सेना का प्रधान सेनापति बनने की प्रार्थना की तब उन्होनें स्पष्ट शब्दों में चार शर्तें रखी थीं। वे किसी पाण्डव को युद्ध में नहीं मारेंगें, पाण्डव यदि पूछेंगे तो उनसे हितकारी बात प्रतिपक्षी होने के बाद मैं बताउंगा, तीसरा उनके रहते कर्ण को युद्ध से विरत रहना पड़ेगा और चौथा वे शिखण्डी से युद्ध नहीं करेंगे क्योंकि वह स्त्री बनकर उत्पन्न हुआ था और बाद में पुरूष बना और वे स्त्री से यु नहीं करते। दुर्योधन ने उनकी सारी शर्तें मानकर उन्हें प्रधान सेनापति बनाया था। महाभारत में इसका उल्लेख इस प्रकार है -

सर्वास्त्वन्यान् हनिष्यामि पार्थिवान भरतर्षभ ।
यान सेमेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतान नृप ॥21॥

पांचाल्यं तु महाबाहौ नाहं हन्यां षिखडिनम् ।
उद्यतेषुमथो दृष्टवा प्रत्युधयन्तमाहवे ॥16/172॥

देव व्रतत्वं विज्ञाय पृथिवीं सर्वराजषु ।
नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥ 19॥

और उन्होंने अपने इन वचनों का पूर्णत: पालन युद्ध के दौरान किया भी।

भीष्म ने अपने वचन के अनुसार महाभारत के प्रथम 10 दिनों तक नेतृत्व किया और इनमें प्रतिदिन दस हजार से अधिक रथियों का संहार किया। उनके वेग को कोई नहीं रोक पाता था। न भीम, न धृष्टद्युम्न, न सात्यक, न अर्जुन। सेना के भारी विनाश से श्री कृष्ण इतने क्षुब्ध हो जाते हैं कि युद्ध में शस्त्र ग्रहण न करने की अपनी प्रतिज्ञा तक तोड़ देते है और वह भी दो बार। पहली बार युद्ध के तीसरे दिन जिसका वर्णन व्यास जी ने इस प्रकार किया है ।

तान वासवान्तरजो निषम्य
नरेन्द्रमुख्यान द्रवत: समन्तात् ।
पार्थस्य दृष्टवा मृदुयुध्दतां च
भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम् ॥82 ॥

ये यान्ति ते यान्तु षिनिप्रवीर
येऽपिस्थित: सात्वत तेऽपियान्तु ।
भीष्मं रथात् पष्य निपात्यमानं
द्रोणं च संख्ये सगणं मयाद्य ॥84॥

तमाद्रवन्तं प्रगृहीत चक्रं ।
दृष्टवा देवं शान्तनवस्तदानीम् ।
असंभ्रमं तद् विचकर्ष दोर्भ्यां
महाधनुर्गाण्डिव तुल्य घोषम् ॥95

उवाच भीष्म स्तमनन्त पौरूषं
गोविन्दमाजाववविमूढ़ चेता: ॥
ऐहयेहि देवेष जगन्निवास
नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे ॥96 ॥

त्वया हतस्यापि ममाद्य कृष्ण
श्रेय: परस्मिनन्निह चैव लोके ।
संभावितोऽस्मि अन्धकवृष्णिनाथ
लौकेस्त्रिभिर्वीर तवाभियानात् ॥98॥

भीष्म चक्र लिए हुए भगवान को आते देखकर भी विचलित नहीं होते और निर्भय होकर कहते हैं कि आइए भगवन और मुझे मारिए । आपके आक्रमण ने मेरा मान ही बढ़ाया है और आपके द्वारा वध मेरे लिए वध कल्याणप्रद होगा। अर्जुन श्रीकृष्ण के पैरों में झूल जाता है तब उन्हें रोक पाता है वह उनको

प्रचण्ड युद्ध का वचन भी देता है। यही स्थिति पुन: युद्ध के नौवें दिन दोहराई जाती है। भीष्म पर्व के अध्याय 106 में हम पुन: देखते हैं कि श्रीकृष्ण का धैर्य समाप्त हो रहा है। वे दल की क्षति से विचलित होकर पुन: भीष्म को मारने रथ से कूदकर घोड़ो का हांकने का प्रतोद लेकर ही दौड़ पड़ते हैं। इस बार भी भीष्म उनके आक्रमण का स्वागत करते हैं और अविचलित रहते हैं। लज्जित अर्जुन बड़ी कठिनाई से श्रीकृष्ण को रोक पाता है ।

युगांतमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे वले ।
नामृष्यत महाबाहुर्माधव: परवीरहा ॥55/106॥

वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कंद महारथात् ।56

अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली ।
प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवत विनदन् मुहु: ॥57॥

अविचलित भीष्म उन्हें प्रणाम करके उन्हें स्वागत करके कहते हैं

मामद्य सात्वत श्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ ॥65/106॥

श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वत: ।
संभावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे ॥66॥

महाभारत का युद्ध कुल अठारह दिन चला जिनमें प्रथम के दस दिन कुरूसेना का नेतृत्व भीष्म पितामह ने ही प्रधान सेनापति के रूप में किया। उसके बाद पांच दिन नेतृत्व द्रोणाचार्य द्वारा किया गया। दो दिन कर्ण द्वारा और आधे दिन के लिए नेतृत्व शल्य द्वारा किया गया था अत: इस युद्ध में भीष्म का योगदान सुस्पष्ट है। अपने वचनों के अनुसार उन्होंनें किसी पाण्डव को नहीं मारा और तो और श्वेत को छोड़कर किसी अन्य महारथी को भी नहीं मारा। वे केवल पाण्डव दल का उसके रथियों, गजारोहियों, अश्वारोहियों आदि का ही संहार करते रहे। इन दस दिनों में उन्होंने अर्जुन को छोड़कर पाण्डव पक्ष के प्राय: सभी प्रधान योद्धाओं को हराया था जिसमें भीम युधिष्ठिर, द्रष्टद्युम्न और सात्यकि जैसे महावीर सम्मिलित हैं। अर्जुन को भी वे रोक लेते थे और आगे नहीं बढ़ने देते थे।

अहानि युयुधे भीष्मो दषैव परमास्त वित
अहानि पंच द्रोणस्तु ररक्ष कुरूवाहिनीम॥30॥ द्वितीय अध्याय

चिंतित पांडवों को अंत में भीष्म की शरण में ही जाना पड़ा और उनसे विजय का आशीर्वाद लेकर उन्हीं से उनकी मृत्यु का उपाय जानना पडा। मुझे नहीं लगता कि संसार में ऐसा कोई अन्य उदाहरण होगा जहॉ प्रधान सेनापति अपने शत्रु पक्ष को अपनी ही मृत्यु का उपाय बता दे। भीष्म जैसे त्यागी और उदारचेता ही ऐसा कर सकते थे। उन्होंने शिखंडी को आगे करके युद्ध करने की युक्ति बताई जिसे वे स्त्री मानते थे उन्होंने बताया कि वे शिखंडी को देखकर वे शस्त्र त्याग देंगे तब अर्जुन उन्हें बाणों से वेध दें। युद्व के दसवें दिन इसी योजनानुसार कार्य हुआ और भीष्म अपना परम पराक्रम दिखाकर शरषैया पर स्थित हो गए। उन्हें ऐसी स्थिति में पहुंचाने वाले न तो शिखंडी के प्रति उन्हें कोई रोष है और न अर्जुन से कोई द्वेष ।

व्यास जी ने युद्ध के नौवें दिन की रात का वर्णन इस प्रकार किया है। पाण्डव शिविर में सभी चिंतित बैठे हैं जय की कोई संभावना उन्हें नहीं दिखती, दल का लगातार विनाश हो रहा है। भीष्म के रहते विजय असंभव है और भीष्म ने यह वचन दिया था कि वे विपक्षी सेना होते हुए भी हमें हितकारिणी सलाह देते रहेंगे। अत: युधिष्ठिर प्रस्ताव रखते हैं कि क्यों न हम जाकर पितामह से ही उनकी मृत्यु का उपाय पूछ लें ।

तस्मात् देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मन: ।
भवता सहिता: सर्वे प्रयाम मधुसूदन ॥47

स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्मानजनार्दन ।
यथा स वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्तास्मि संयुग ॥49॥

तब कृष्ण ने उनकी बात का अनुमोदन करते हुए कहा कि आपका प्रस्ताव मुझे अच्छा लगा। चलो हम उनके पास चलें।

रोचते ते महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम् ॥52

वे सब भीष्म के पास जात हैं और भीष्म भी अलौकिक हैं । अपनी मृत्यु का रहस्य भी बता देते हैं । उनका व्रत है कि स्त्री पर अस्त्र नहीं उठाते । विप्र पर, बालक पर, नि:शस्त्र योद्धा पर पलायन करने वाले पर और शरणागत पर भी अस्त्र नहीं उठाते । वे शिखण्डी को स्त्री ही मानते हैं क्योंकि वह पूर्व जन्म में अम्बा थी जो द्रुपद के घर कन्या रूप में ही शिखण्डिनी बनकर ही उत्पन्न हुई थी पुरूषत्व तो उसे शिवजी के वरदान के अनुसार स्थूणकर्ण

नामक यक्ष की कृपा से मिला। अत: जब भी वह सामने आएगा तो वे अपने अस्त्र छोड़ देंगे और उसी समय अर्जुन को चाहिए कि वह मुझ पर भीषण प्रहार करे क्योंकि धनुष हाथ में रहते हुए तो मुझे इन्द्र भी नहीं हरा सकते। और अगले दिन इसी योजनानुसार कार्य किया गया था ।

शिखण्डी समरामर्षी शूरष्च समितिंजय ।
यथाभवच्च स्त्रीपूर्वं पश्चात् पुंस्त्व समागत: ॥81/107॥

अर्जुन: समरे शूर: पुरस्कृत्य शिखण्डिनम ।
मामेव विषिखैस्तीक्षणैरभिद्रवतु दंषित: ॥82/107 ॥

अमंगल्यध्वजे तस्मिन् स्त्रीपूर्वं च विषेषत: ।
न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषु: कदाचन ॥83/107॥

भीष्म के समरभूमि में गिरने पर व्यासजी कहते हैं कि कर्ण के मन में भी कुछ भय सा समा गया और वह दुखी होकर आतुरता के साथ उनके दर्शन को उनके पास गया। शरशैया पर पडे कार्तिकेय के समान भीष्म को देखकर उसकी आंखों में आंसू आ गए।

निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृष। 4।

भीष्म ने उसे स्नेहपूर्वक देखा और एक हाथ बढाकर गले लगाया जैसे पिता अपने पुत्र को लगाता है।

पितेव पुत्रं गांगेय परिरभ्यैक पाणिना॥7॥

वे कर्ण से कहते है पुत्र यदि तुम मेरे पास नहीं आते तो तुम्हारा कल्याण नहीं होता ।

यदि मां नाधिगच्छेथा न ते श्रेयो घ्रुवं भवेत्॥8॥

वे उसके जन्म का रहस्य जानते हैं जो अब तक कुल प्रतिष्ठावश गुप्त रखा आज उसे प्रकट कर देते हैं वे कहते हैं कि पुत्र तुम कौन्तेय हो अधिरथ के पुत्र नहीं। तुम सूर्य से उत्पन्न हो और यह भेद मुझे स्वयं नारद ऋषि ने बताया था। यही बात मुझे महर्षि व्यास ने भी बताई है तुम्हारे प्रति मेरे मन में कोई भी द्वेष नहीं है।

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथ: पिता।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया॥9॥

कृष्ण द्वैपायना च्चैव तच्च सत्यं न संषय:
न च द्वेषोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यंब्रवीमि ते॥10॥

वे यह भी रहस्य बताते है कि पूर्व में मैंने बार-बार तुम्हारी भर्त्सना इस कारण की थी कि तुम्हारा तेज मंद पड जाए क्योंकि मुझे अपने कुल में फूट पडने का भय था।

तेजोवधनिमित्तं तु परूषं त्वाहमब्रुरवन्।11।

न त्वया सदृषं कष्चित पुरूषेष्वमरोपम।
कुल भेदभयाच्चाहं सदा परूषमुक्तवान॥15॥

भीष्म कहते है कि हे कर्ण तुम अस्त्र संचालन में स्वयं अर्जुन और कृष्ण के समान हो।

इष्वस्त्रे चास्त्र संधाने लाघवेऽस्त्रवले तथा।
सदृष: फाल्गुनेनासि कृष्णेन च महामना॥16॥

वे कहते है कि तुम्हारी वीरता सुप्रमाणित है तुमने काशीराज द्वारा आयोजित स्वयंवर में जाकर अकेले ही सब राजाओं को परास्त कर दुर्योधन के लिए कन्या प्राप्त की। ऐसा पूर्व काल में केवल मैंने किया था।

कर्ण काषि पुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता।
कन्यायै कुरूराजस्य राजानो मृदिता युधि॥17॥

तुमने महाबली जरासंध को भी परास्त किया है वे उसे समझाते हैं कि पांडव तुम्हारे सगे भाई हैं उनसे जाकर मिल जाओ यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो। मैंने युद्ध के प्रारंभ में भी अर्धरथी कहकर तुम्हारा अपमान किया था ताकि तुम युद्ध से विरत हो जाओ। मेरी मृत्यु से ही बैर की यह अग्नि बुझ जाए और समस्त पृथ्वी के राजा निर्भय व शोकरहित हो जाएं-

सोदर्या: पाण्डवा वीरा भ्रातरस्ते ऽरि सूदन
संगच्छ तै र्महावाहो मम चेदिच्छसि प्रियम्॥21॥

मया भवतु निर्वृतं वैरमादित्यनंदन।
पृथिव्यां सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामया॥22॥

कर्ण उनका सुझाव विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर देता है वह कहता है कि अपने जन्म का रहस्य मुझे पहले ही पिता सूर्य ने बता दिया था किंतु मैं दुर्योधन के हित के लिए ही प्रतिबद्ध हूं। फिर वह रहस्य की बात बताता है कि सारे क्षत्रिय वीरगति को प्राप्त होकर स्वर्ग जाएं और रोगग्रस्त होकर न मरें इसी उद्देश्य से मैंने पांडवों को क्रोधित किया है और यह घटना अवश्यंभावी है जिसका निवारण संभव नहीं है। मैं पांडवों और श्रीकृष्ण का प्रभाव और पराक्रम जानता हूँ ।

मा चैतद व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव।
कोपिता पाण्डवा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम्।
अवष्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुम्॥27॥

वह पितामह से क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करने की अनुमति मांगता है तब भीष्म भी उसे आशीष देते हैं कि जाओ पराक्रम का सहारा लेकर अभिमानशून्य होकर युद्ध करो क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मानुकूल युद्ध से बढ़कर कोई कल्याणकारी साधन नहीं है ।

युध्यस्व निरहंकारो बलवीर्यव्यपाश्रय:
धर्माध्दि युध्दाच्छ्रेरयो ऽन्यत क्षत्रियस्य न विद्यते॥37॥

भीष्म के हृदय का रहस्य जानकर कर्ण का उनके प्रति सारा द्रोह समाप्त हो जाता है । वह उनकी करूणा देखकर नत मस्तक वह भीष्म से क्षमायाचना करता है ।

दुरूक्त विप्रतीपं वा रसभाच्चापलात तथा ।
यन्मयेह कृतं किंचित तन्मे त्वं क्षंतुमर्हसि ॥33॥

अपने गिरने पर एक बार पुन: इतनी पीडा में भी वे अपने पौत्रों का कल्याण ही चाहते हैं और दुर्योधन को बुलाकर पांडवों से संधि कर लेने को बोलते हैं। वे कहते हैं कि यदि युद्ध उनके प्राणों की बलि लेकर ही रूक जाए तब भी अच्छा है अभी बहुत अधिक विनाश नहीं हुआ है और उनका कथन सत्य भी है क्योंकि दसवें दिन तक कौरव पक्ष के कोई उल्लेखनीय महारथी नहीं मारे गए थे। दुर्योधन के सौ में से केवल नौ बंधु ही तब तक मारे गए थे। पांडव पक्ष में भी महारथी श्वेत तथा विराट पुत्र उत्तर ही मारे गए थे। सामान्य योद्धाओं का तो भारी विनाश हुआ था। ऐसा नहीं है कि भीष्म उल्लेखनीय योद्धाओं को नहीं मार सकते थे किंतु उन्होंने जानबूझकर ऐसा नहीं किया पांडवों को न मारने की प्रतिज्ञा तो वे पहले की कर चुके थे। किंतु उनके परामर्श पर एक बार फिर दुर्योधन ने कोई ध्यान नहीं दिया और युद्ध से विरक्त नहीं हुआ। भीष्म शरशैया पर पडे अगले आठ दिन का सर्वनाश देखते रहे।

जिस प्रकार उस काल में भीष्म के समान कोई योद्धा नहीं था उसी प्रकार उनके समान ज्ञानी भी कोई नहीं था। इसका प्रमाण हमें व्यासजी और श्रीकृष्ण के कथनों से मिलता है जो युधिष्ठिर से कहते हैं कि भीष्म अब अस्ताचल के सूर्य के समान कुछ ही दिनों तक पृथ्वी पर हैं उनके साथ ही ज्ञान और धर्म का लोप हो जाएगा। अत: तुम उनसे नीति और धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लो।

जब व्यास जी से युधिष्ठिर ने धर्माचरण और राज्य व्यवस्था के संचालन दोनों की विसंगति के कारण धर्म विमूढ़ होकर व्यास जी से ज्ञान की याचना करते है तो वहां उपस्थित नारद जी की ओर देखते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं कि यदि तुम्हें धर्म का तत्व जानना है तो भीष्म के पास जाओ। वे तुम्हारे मन में आए हुए समस्त संशयों को दूर कर देगें क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं। उन्होंने शुक्राचार्य तथा देव गुरू बृहस्पति से व्याख्या सहित समस्त शास्त्र का अध्ययन किया है। उन्होंने भार्गव और च्यवन ऋषि से वेद और वेदांगो का अध्ययन किया है। ब्रह्मा पुत्र सनातन से अध्यात्म विद्या और मार्कंडेय ऋषि से यति धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है तथा धर्नुर्वेद तथा युद्ध विद्या इन्द्र तथा परशुराम से सीखी है। अनेक ब्रह्मर्षि उनके सभासद रहे हैं।

श्रोतु मिच्छसि चेद् धर्मं निखिलेन नराधिप ।
प्रैहि भीष्मं महाबाहो वृद्धं कुरूपितामहम् ॥6/37 शांति पर्व ॥

स ते धर्मरहस्येषु संषयान मनसि स्थितान ।
छेत्ता भागीरथीपुत्र: सर्वज्ञ: सर्वधर्मवित् ।7/37 शांति पर्व ॥

उषनावेद यच्छास्त्रं यच्च देवगुरूद्विर्वज: ।
तच्च सर्वं सवैयाख्यां प्राप्तवान कुरूसत्वं ॥10/37 शांति पर्व ॥

भार्गवाच्च्यवनाच्चापि वेदानंगोपवृंहितान् ।
प्रतिपेदे महाबाहुर्वसिष्ठाच्चरित व्रत: ॥11/37 शांतिपर्व ॥

और युधिष्ठुर भी यह जानते हैं इसी कारण वे कृष्ण के साथ भीष्मजी के पास डरते हुए जाते हैं वे स्वयं को अपराधी मानते हैं किंतु भीष्म उनकी सब शंकाएं दूर कर देते हैं और उन्हें समझाते हैं कि ये सब प्राणियों के अपने कर्मो का फल है।

परतंत्रं कथं हेतु मात्मान मनु पष्यसि।
कर्मणां हि महाभाग सूक्ष्मं हयेतदतीन्द्रियम॥15॥
नैव त्वया कृतं कर्म नापि द्रुर्योधनेन वै।
कालेनैतत कृतं विद्वि निहता येन पार्थव:॥82॥

श्रीकृष्ण जब उन्हें ज्ञानोपदेश के लिए कहते हैं तो भीष्म कहते हैं कि शरीर की भयानक पीड़ा से उनका मन स्थिर नहीं है और बुद्धि भी विमल नहीं है वे उपदेश की स्थिति में नहीं हैं तब श्रीकृष्ण अपने प्रभाव से उन्हें समस्त वेदना क्षुधा और तृषा से मुक्त कर देते हैं तब वे युधिष्ठिर को विविध विषयों पर उपदेश देते हैं। युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश देने के प्रसंग में भी लोक प्रचलित धारणा है कि भीष्म को उपदेश देते देख द्रोपदी हंस पड़ी और बोली कि पितामह द्युत सभा में जब मेरा अपमान हो रहा था तब आपका धर्म ज्ञान कहां चला गया था। तब भीष्म ने उत्तर दिया कि मैं दुर्योधन का दूषित अन्न खा रहा था अत: मेरी विवेक बुद्धि मलिन हो गई थी अब अर्जुन के बाणों से वह अशुद्ध रक्त बह गया है।

महाभारत में शांतिपर्व या अनुशासन पर्व में इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है आष्चर्य होता है कि किस प्रकार व्यर्थ ही द्रोपदी को कटूक्ति करने वाली प्रगल स्त्री चित्रित करके लोक ने न तो द्रोपदी के प्रति और न भीष्म के प्रति कोई न्याय किया है मैं ऐसी असत्य धारणा को सप्रमाण निरस्त करना चाहता हूं।

पुरूषार्थ और भाग्य की विवेचना करते हुए वे कहते हैं

यथा बीजं बिना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम।
तथा पुरूष कारेण बिना देवं न सिधयति॥1॥ अनुषासन पर्व षष्ठ अध्याय

कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित॥10॥

प्राप्यते कर्मणा सर्व न दैवादकृतात्मना॥12॥

शौचेन लभते विप्र: क्षत्रियो विक्रमेण तु।
वैष्य: पुरूष कारेण शूद्र शुश्रूषया श्रियम॥16॥

नादातारं भजन्त्यर्था न क्लीवं नापि निष्क्रियम।
ना कर्मषीलं नाषूरं तथा नैवातपस्विनम॥18॥

कृत: पुरूषकारस्तु दैवमेवानुवर्तते।
न दैव मकृते किंचित कस्यचित दातुमर्हति॥22॥

कर्म फल की अवश्यंभाविता बताते हुए वे युधिष्ठिर से कहते हैं कि कर्म का फल कभी नष्ट नहीं होता जिस-जिस शरीर से जो जो कर्म होता है उस-उस शरीर से फल भोग भी होता है। जिस प्रकार ऋतु आने पर वृक्ष स्वत: ही पुष्प और फल देने लगते हैं उसी प्रकार पूर्व कृत कर्म भी समय आने पर फल देने लगते हैं।

न नष्यति कृतं कर्म सदा पन्चेन्द्रियैरिह।5।

अचौद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वकालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम॥23॥ सप्तमो अध्याय

वे नीति का उपदेश देते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं कि धन दान से प्राप्त होता है। मौन धारण करने से आज्ञा बलवति होती है तपस्या से भोग सामग्री प्राप्त होती है तथा ब्रम्हचर्य से स्वयं जीवन प्राप्त होता है।

धनं लभेत दानेन मौने नाज्ञां विषाम्पते।
उपभ्ज्ञोगांष्च तपसा ब्रम्हचर्येण जीवितम॥14॥

कुन्ती पुत्र को वे अपना जीवनदर्शन बताते हुए कहते हैं कि जिसने अपने पिता को प्रसन्न किया वह स्वयं प्रजापति को प्रसन्न करता है जो अपनी माता को हर्षित करता है उससे देवी पृथ्वी की ही पूजा हो जाती है और जो आचार्य की सेवा करता है उसके द्वारा स्वयं ब्रम्ह पूजित हो जाता है। जिसने इन तीन को आदर दिया उसने सारे धर्म कर लिए और जिसने इनका अनादर किया उसकी समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं।

येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीत: प्रजापति:।
प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता॥25॥

येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्यात ब्रम्हपूजित:।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृता:
अनाद्रतास्तुयस्यैते सर्वास्तस्याफला: क्रिया:॥26॥

राजधर्म का उपदेश करते हुए भीष्म कहते हैं कि स्वधर्म पर स्थित क्षत्रिय ही राजलक्ष्मी पा सकता है और राजदंड धारी राजा का रक्षा से भिन्न कोई कर्त्तव्य नहीं है। वे कहते हैं कि विद्वानों और ब्राम्हणों का विधिपूर्वक पूजन करना क्योंकि वे देवताओं के भी देवता हैं।

क्षत्रियो हि स्वधर्मेंण श्रियं प्राप्नोति भूयसीम
राजादंडधरो राजन रक्षा नान्यत्र क्षत्रियात॥41॥

ब्राम्हणा हि महाभागा देवानामपि देवता:
तेषु राजन प्रवेर्तेत पूजया विधिपूर्वकम॥42॥

स्त्रियों को सदा प्रसन्न रखने और सम्मानित करने तथा उनकी रक्षा करने का उपदेश वे देते हैं।

श्रिय एता स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता।
पालिता निग्रहीताष्च श्री: स्त्री भवति भारत॥15॥

शील और सदाचार की महत्ता बताते हुए भीष्म कहते हैं कि यही आर्यत्व का लक्षण है यदि पुरूष में अनाचार और निष्क्रियता और क्रूरता है तो वे उसके अधम जन्म का प्रमाण है और यदि शूद्र में भी सदाचार है तो उसका आदर किया जाना चाहिए ।

आनर्यत्वमनाचार: क्रूरत्वं निष्क्रियात्मता।
पुरूषं व्यंजयन्तीह लोक कलुषयोनिजम॥41॥

ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत।
अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सदवृत्तिमभिपूजयेत॥48॥

मानव की कृतिविधि का कोई क्षेत्र भीष्म ने छोडा नहीं है जिस पर धर्मराज को उन्होंने उपदेश न दिया हो। उन्होंने वृक्षारोपण तक का महत्व बताते हुए उसे सत्यफलदायी बताया है।

तडागकृत वृक्षरोपी इष्ट यज्ञष्च यो द्विज:।
ऐते स्वर्गे मही यन्ते ये चान्ये सत्यवादिन:॥32॥

युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश देते हुए भीष्म ने राजधर्म के उपर बड़ी मूल्यवान बातें कहीं है। उन्होंने राजा के कर्तव्य, विस्तार से बताए हैं, किंतु निम्नलिखित दस श्लोकों में ही सम्पूर्ण कथ्य का तत्व निरूपित कर दिया है।

उत्थानेन् सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर ।
न ह्युत्थानमृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसादयेत ॥14 शांति पर्व॥

विपन्ने च समारम्भे संतापं मा स्म वै कृथा: ।
घटस्वैव सदाऽऽत्मानं राज्ञामेषो परो नय: ॥16 शांति पर्व॥

न हि सत्या दृते किंचित राज्ञां वै सिद्धि कारकम् ।
सत्ये हि राजा निरत: प्रेत्य चेह च नंदति ॥17॥
मृदुर्हि राजा सततं लन्घ्यौ भवति सर्वष: ।
तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्मादुभयमाश्रय ॥21॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मत: क्षत्रमष्नतो लौहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेज: स्वासु योनिषु शाम्यति ॥24॥

अयो हन्ति यदाष्मानमग्नि वारि हन्यते ।
ब्रह्म च क्षत्रियो द्वेष्टि तदा सीदन्ति ते त्रय: ॥25॥

दुर्गेषु च महाराज षट्सु ये शास्त्र विनिष्चिता।
सर्व दुर्गेषु मन्यन्ते नर दुर्गम सुदुस्तरम॥35॥

तस्मान्नित्यम दया कार्या चातुर्वर्णे विपष्चिता।
धर्मात्मा सत्यवाक चैव राजा रंजयति प्रजा:॥36॥

क्षममाणं नृपंनित्यं नीच: परिभवेज्जन:।
हस्तियंता गजस्यैव षिर एवारूरूक्षति॥39॥

तस्मान्नैव मृदुर्नित्यम तीक्ष्णोचैव भवेन्नृप:।
बसंतार्क इव श्रीमान न शीतो न च घर्मद:॥40॥

यथाहि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम।
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राज्ञाप्यसंषयम॥45॥

वर्तितव्यं कुरूश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना ।
स्वं प्रियं तु परित्यज्य यत यल्लोकहितं भवेत॥ 46॥

द्वाविमौ ग्रसते भूमि: सर्पो विलषयानिव।
राजानं चाविरोध्दारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम॥3/57॥

सप्तांगस्य च राज्यस्य विपरीतं य आचरित।
गुरूर्वा यदि वा मित्रं प्रतिहन्तव्य एव स:॥8/57॥

लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्म: सनातन:।
सत्पात्र रक्षणं चैव व्यवहारस्य आर्जवम॥11॥

आत्मवांष्च जितक्रोध: शास्त्रार्थ कृत निष्चय:।
धर्मे चार्थे कामे च मोक्षे च सततं रत:॥13॥

त्रय्यां संवृतमंत्रष्च राजा भवितुमर्हति।
बृजिनं च नरेन्द्राणां नान्यच्चारक्षणात् परम्॥14॥

द्विट छिद्र दर्षी नृपतिर्नित्यमेव प्रषस्यते।
त्रिवर्गे विदितार्थष्च युक्तचारोपधिष्च य:॥17॥

य: सत्करोति ज्ञानानि ज्ञेये परहिते रत:।
सतां वर्त्मानुगस्त्यागी स राजा राज्यमर्हति॥39॥

तद्राज्ये राज्य कामानां नान्यो धर्म: सनातन:।
ऋते रक्षां तु विस्पष्टां रक्षा लोकस्य धारिणी॥42॥

अक्रोधनो ह्यव्यसनी मृदु दण्डो जितेन्द्रिय।
राजा भवति भूतानां विष्वास्यो हिमवानिव॥29॥

पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवा:।
निर्भया विचरिस्यन्ति स राजा राजसत्तम:॥33॥

भीष्म जी महान राजनीतिज्ञ हैं वे आन्विक्षिकी त्रयी वार्ता तथा दण्ड नीति सबके पण्डित हैं विभिन्न पूर्ववर्ती महान आचार्यों के मतों का उनको यथा तथ्य ज्ञान है जैसा कि नीचे के दो श्लोकों से प्रमाणित होता है जहां वे पूर्ववर्ती आचार्यों के मत को उद्यत करते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं कि राजा के लिए रक्षा करना ही सबसे बड़ा कर्तव्य है।

विषालाक्षष्च भगवान काव्यष्चैव महातपा:।
सहस्त्राक्षो महेन्द्रष्च तथा प्राचेतसो मनु:॥2॥

भरद्वाजष्च भगवांस्तथा गौर षिरा मुनि:।
राजषास्त्र प्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिना:॥3॥

रक्षामेव प्रषंसन्ति धर्मं धर्मभृतां वर।
राज्ञा राजीवताम्राक्ष साधनं चात्र मे श्रृणु॥4/58॥

फिर वे राज्य की रक्षा के साधन बताते हैं जिसमें गुप्तचरों की भूमिका महत्वपूर्ण है करों का समुचित आदान और अनुचित साधनों से धन संग्रह न करना बुद्धिमानों को आश्रय देना शौर्य उदारता सत्य और प्रजाहित विभिन्न रीतियों से शत्रु पक्ष का भेदन प्राचीन भवनों का पुनरूध्दार दण्ड का समुचित प्रयोग साधु पुरूषों का अपरित्याग कुलीन पुरूषों का भरण-भारण बुध्दिमानों की सेवा सेना को सदा प्रसन्न रखना प्रजा की दषा का स्वयं निरीक्षण परिश्रम पूर्वक कार्य व्यक्तियों को संगठित होने से बचाना नगर की रक्षा में अन्य पर विश्वास न करना नीति और धर्म का अनुसरण निरंतर उद्यमशील रहना शत्रु की उपेक्षा न करना और अनार्य की संगति न करना राज्य की रक्षा के प्रधान उपाय हैं।

चारष्च प्रणिधिष्चैव काले दानममत्सरात्।
युक्त्यादानं न चादानमयोगेन युधिष्ठिर॥5/58॥

सतां संग्रहणं शौर्यं दाक्ष्यं सत्यं प्रजाहितम्।
अनार्जवैरार्जवैष्च शत्रुपक्षस्य भेदनम्॥6॥

साधुनामपरित्याग: कुलीनानां च धारणम्।
निष्चयष्च निचेयानां सेवा बुध्दिमतामपि॥8॥

बलानां हर्षणं नित्यं प्रजानामन्ववेक्षणम्।
कार्येष्वखेद: कोषस्य तथैव च विवर्धनम्॥9॥

पुरगुप्तिरविष्वास: पौर संघात भेदनम्।
अरिमधयस्थ मित्राणां यथावच्चान्ववेक्षणम्॥10॥

नीति धर्मानुसरणं नित्यमुत्थानमेव च।
रिपूणामनवज्ञानं नित्यं चानार्यवर्जनम्॥12/58॥

वे आगे सफलतम राजा के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि वही व्यक्ति इस पद को पा सकता है जो ज्ञानी हो त्याग आदि गुणों से पूर्ण हो शत्रुओं की निर्बलताओं को जानने में तत्पर हो सभी वर्णों को जिसके दर्शन दुर्लभ न हो और जो नीति व अनीति दोनों को जानता हो शीघ्र कार्य करने वाला क्रोध को जीत लेने वाला महामनुष्वी क्रोधहीन राजपुरूषों वाला सतत क्रियाषील तथा आत्मश्लाघाहीन हो जिसके आरंभ किये हुए कार्य सफलता पूर्वक पूर्ण होते हैं वही राजा राजाओं में श्रेष्ठ है जो राजा उद्यमषील नहीं है वह बुद्धिमान होते हुए भी शत्रुओं द्वारा पराजित किया जाता है जैसे कि विषहीन सर्प राजा को दुर्बल शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि थोड़ी भी अग्नि या थोड़ा भी विष घातक हो जाता है। वे अन्त में कहते हैं कि राज्य का तंत्र महान होता है और इसका भार जितेन्द्रिय व्यक्ति ही वहन कर सकते हैं मृदु व्यक्तियों के द्वारा यह भार वहन नहीं किया जा सकता है।

प्राज्ञसयाग गुणोपेत: पररन्ध्रेषु तत्पर:।
सुदर्ष: सर्ववर्णानां नयानयवित् तथा॥30॥

क्षिप्रकारी जितक्रोध: सुप्रसादो महामना:।
अरोष प्रकृतिर्युक्त: क्रियावानविकत्थन:॥31॥

आरब्धान्येव कार्याणि सुपर्यवसितानि च।
यस्य राज्ञ: प्रहृष्यन्ति स राजा राजसत्तम:॥32/57॥

उत्थानहीनो राजा हि बुध्दिमानपि नित्यष:।
प्रधर्षणीय: शत्रूणां भुजंग इव निर्विष:॥16/58॥

न च शत्रु रवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा।
अल्पोऽपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च॥17॥

राज्यं हि सुमहत् तंत्रं धार्यते नाकृतात्मभि: ।
न शक्यं मृदुना वोढुमायासस्थानमुत्तमम्॥21॥

अंत में व्यासजी भीष्म से कहते हैं कि आप युधिष्ठिर को नगर जाने की आज्ञा दें ताकि वे राज्य व्यवस्था देखें तब भीष्म उन्हें आदेशित करते हैं और कहते हैं कि राज्य में सुव्यवस्था बनाकर सबको सांत्वना देकर अमात्यों की नियुक्ति करके जब सूर्य उत्तरायण आ जाएं तब मेरे पास आ जाना।

युधिष्ठिर तदनुसार हस्तिनापुर आ जाते हैं। विदुर और कृपाचार्य की सम्मति से राज्याधिकारियों की नियुक्ति करते हैं। दुखी लोगों को सांत्वना देते हैं और 50 दिन हस्तिनापुर में रुककर वे सूर्य के उत्तरायण आते ही सभी परिवार के लोगों बंधु बांधवों ध्रतराष्ट्र तथा गांधारी तथा श्रीकृष्ण को लेकर वे कुरूक्षेत्र आते हैं और वहॉ पाते हैं कि भीष्मजी के चारों ओर नारद, असितदेवल व्यासजी याज्ञवल्क्य पैल धौम्य तथा अनेकानेक महर्षिगण उपस्थित हैं। वे भीष्म को प्रणाम करते हैं भीष्म उनको देखकर प्रसन्न हो जाते हैं और कहते हैं कि अच्छा हुआ तुम आ गए। शरशैया पर पडे हुए मुझे 58 दिन हो गए हैं। ये दिन मुझे 100 वर्षों के बराबर लगे। अब सूर्य उत्तरायण आ गया है। माघ मास चल रहा है जिसकी शुक्ल पक्ष की यह अष्ठमी है। अब सब लोग मुझे अनुमति दें और विदा करें। व्यासजी ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है।

उषित्वा शर्वरी: श्रीमान पन्चाषन नगरोत्तमे।
समयं कौरव्या ग्यस्य सस्मार पुरूषर्षभ:॥5॥

स निर्ययौ गजपुरात याजकै: परिवारित:
दृष्टवा निवृतमादित्यं प्रवृतं चोत्तरायणम॥6॥

उपास्यमानं व्यासेन पाराषर्येण धीमता।
नारदेन च राजर्षे देवलेनासितेन च॥13॥

दिष्टया प्राप्तोडसि कौन्तेय सहमात्यो युधिष्ठिर।

परिवृतो हि भगवान सहस्त्रांषु र्दिवाकर॥26॥

अष्ट पन्चाषतं रात्रय: शयानस्याद्य मे गता:
शरेषु निषिताग्रेषु यथा वर्ष शतं तथा॥27॥

माघोडयं समनुप्राप्तो मास: सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभाग शेष: पक्षोडयं शुक्लो भवितुमर्हति॥28॥

वे धृतराष्ट्र से कहते हैं कि तुम्हारे क्रोध लोभ और ईर्ष्या के वशीभूत दुष्ट पुत्र अपने कर्मो के कारण विनाष को प्राप्त हुए हैं। भावी को कौन टाल सकता है। यह रहस्य तुम्हें व्यास जी ने भी बताया है। अत: अब शोक न करो। इन विनम्र पांडवों को ही अपना पुत्र मानो और शांति से रहो। वे भी तुम्हारी सेवा करेंगे।

न शोचितव्यं कौरव्य भवितव्यं हितत तथा।
श्रुतं देव रहस्यं ते कृष्णद्वैपायनादपि॥32॥

यथा पांण्डो सुता राजंस्तथैव तब धर्मत:
तान पालय स्थितो धर्मे गुरूषुश्रूषणे रतान॥33॥

फिर वे श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा करें और मुझे जाने की आज्ञा दें वे भगवान की स्तुति करते हैं और कहते हैं कि मैं आपका स्वरूप जानता हूं आप ही बदरिका में नारायण ऋषि के रूप में रहे हैं। आप ही परम पुरूष हिरण्यात्मा, सविता और विराट हैं।

वासुदेवो हिरण्यात्मा पुरूष: सविता विराट् ।
जीवभूतो sनुरूपसत्वं परमात्मा सनातन: ॥ 38॥

स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्षेकलेवरम् ।
त्वयाहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम् ॥45॥

श्री कृष्ण ने तब जो उत्तर दिया है उससे स्पष्ट है कि वे भीष्म को अपना परम भक्त मानते हैं और पूर्णत: निष्पाप मानते हैं। और जिसे भगवान् ने निष्पाप मान लिया उसके जीवन में दोष देखना केवल दुराग्रह पूर्ण छिद्रान्वेषण है।

अनुजानामि भीष्म त्वां वसून प्राप्नुहि पार्थिव ।
न ते sस्ति वृजिनं किंचिदिहलोके महाद्वयुते ॥46॥

पुत्र भक्तोऽसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापर: ।

तेन मृत्युस्तव वषेस्थितो भृत्य इवानत: ॥47॥

फिर भीष्म वहां स्थित सभी लोगों से आज्ञा लेते हैं कि मैं प्राण त्यागने की इच्छा कर रहा हूं और उनको अपना अंतिम उपदेश देते हैं कि आप सब लोग सत्य पर स्थिर रहने के लिए ही अध्यवसाय करें क्योंकि सत्य ही परम बल है। वे भरत वंशी क्षत्रियों को अपना अंतिम संदेश देते हैं कि उन्हें सदा ही दयावान, आत्मवान, ज्ञान और धर्मशील और तपस्वी होना चाहिए।

प्राणानुत्स्त्रष्टुमिच्छामि तत्रानुज्ञातु मर्हथ ।
सत्येषु यतितव्यं व: सत्यं हि परमं बलम् ॥49॥

आनृषंस्य परैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभि: ।
ब्रह्मण्यैर्धर्मषीलैष्च तपोनित्यैष्च भारता: ॥50॥

इसके पश्चात उन्होंने ध्यान लगाया और योगियों की भांति उनके प्राण ब्रह्मरंध्र से होकर निकले। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि जिस जिस अंग से वे प्राणों का निरोध करते हैं उस उस अंग से बाण अपने आप निकलकर गिर जाते हैं और वह अंग स्वस्थ और घावविहीन हो जाता है। उनके सिर से एक उल्का के समान तेज निकलकर आकाश में चला जाता है ।

धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमम ।
तस्योर्ध्वगमनं प्राणा: संन्निरूध्दा महात्मन: ॥2॥

महोल्केव च भीष्मस्य मूर्धदेषाज्जनादिप ।
नि: सृत्याकाषमाविष्य क्षणेनान्तरधीयत ॥8॥

सब लोगों को महान दु:ख होता है। तत्पश्चात् उनका अंतिम कार्य सम्पंन किया जाता है। यहां उल्लेखनीय बात यह है कि चिता चयन आदि कार्यों में विदुर तथा धृतराष्ट्र पुत्र युयत्सु सम्मिलित हैं। दासी पुत्र और वैष्य जाति की स्त्री से उत्पन्न होते हुए भी उन दोनों को किसी भी प्रकार किसी अधिकार से वंचित नहीं किया गया है। चिता में अग्नि धृतराष्ट्र देते हैं और फिर सब लोग दुखी मन से उन्हें जलांजलि देने के लिए गंगा तट पर जाते हैं।

चितां चक्रुर्महात्मान: पाण्डवा विदुरस्तथा ।
युयुत्सुष्चापि कौरव्य प्रेक्षका स्त्वितरेऽभवन् ॥11॥

उन सबको देखकर गंगा जल से प्रकट होती हैं और अपने पुत्र के लिए शोक करती हैं। कहती हैं कि जिसे स्वयं परशुराम नहीं हरा सके उस मेरे पुत्र को तुच्छ शिखण्डी ने कैसे मार डाला।

अष्मसारमयं नूनं हृदयं मम पार्थिवा ।
अपष्यन्त्या: प्रियं पुत्रं यन्न दीर्यति मेऽद्यवै ॥25॥

श्री कृष्ण भागीरथी को समझाते हैं कि तुम्हारे पुत्र अपराजेय थे उनके लिए शोक न करो वे परम लोक को गए हैं पृथ्वी पर मनुष्य रूप में वे श्राप के कारण ही अवतीर्ण हुए थे अन्यथा वह वसु थे। उन्हें शिखण्डी ने नहीं प्रबल पराक्रमी अजुर्न ने मारा है।

समास्वसिहि भद्रे त्वं मा शुच: शुभदर्षने ।
गत: स परमं लोकं तव पुत्रो न शंसय: ॥

वसुरेष महातेजा शापदोषेण शोभने ।
मानुषत्व मनु प्राप्तो नैनं शोचितुमर्हसि ॥31॥

इस प्रकार गंगा के हर्ष से जो अध्याय प्रारंभ हुआ था उसका समापन आज गंगा के ही विलाप से हो गया। एक महान् युग का अंत हो गया ।